ISSN No : 2583-3316

कृषि उद्यान दर्पण

भाग-6 । अंक -2 अगस्त 2026

SAAHAS
Society for Advancement in Agriculture, Horticulture & Allied Sectors

ISSN No. 2583-3316

कृषि उद्यान दर्पण

3/2, ड्रमण्ड रोड, (नथानी अस्पताल के सामने), प्रयागराज-211001, (U.P.) दूरभाष-9452254524
वेबसाइट : saahasindia.org, ई-मेल-contact.saahas@gmail.com
Article Submission :– krishiudyandarpan.hi@gmail.com

सम्पादकीय मण्डल

प्रधान संपादक : **डॉ. विवेक कुमार त्रिपाठी**
अधिष्ठाता, उद्यान संकाय, चंद्रशेखर आजाद कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कानपुर (उ.प्र.)

वरिष्ठ संपादक : **डॉ. रोशन लाल राऊत**
वरिष्ठ वैज्ञानिक एवं विभागाध्यक्ष, कृषि विज्ञान केन्द्र, बालाघाट (एम.पी.)

सह सम्पादक गण :

: **डॉ. नीलम राव रंगारे**
वैज्ञानिक, संस्था निदेशालय
इन्दिरा गांधी कृषि विश्वविद्यालय, लाभण्डी, रायपुर (छत्तीसगढ़)

: **डॉ. नंगखाम जेम्स सिंह**
पशुचिकित्सक क्षेत्र सहायक,पशुपालन एवं डेयरी विभाग, शुआट्स, (उ.प्र.)

: **डॉ. खलील खान**
मृदा वैज्ञानिक, कृषि विज्ञान केन्द्र दलीप नगर कानपुर देहात, चंद्रशेखर आजाद कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, कानपुर (उ.प्र.)

: **डॉ. प्रमिला**
सहायक अध्यापक-सह-वैज्ञानिक, सब्जी विज्ञान, उद्यान विभाग
पं. दीन दयाल उद्यान एवं वानिकी महाविद्यालय, पिपरकोठी, बिहार

: **डॉ सुधीर दास**
सह-प्राध्यापक, सब्जी विज्ञान, उद्यान विभाग, पं. दीन दयाल उपाध्याय उद्यानिकी एवं वानिकी महाविद्यालय, पिपरकोठी, बिहार

: **डॉ आशीष रंजन**
सहायक प्रोफेसर सह जूनियर वैज्ञानिक, उद्यान विभाग, बिहार कृषि विश्वविद्यालय, सबौर, भागलपुर, बिहार

: **डॉ. आशुतोष शुक्ला**
मृदा विज्ञान विभाग, महात्मा गांधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय, सतना, मध्य प्रदेश

: **डॉ. सुनील कुमार**
असिस्टेंट प्रोफेसर, पादप रोग विज्ञान विभाग, बांदा कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, बांदा (उ.प्र.)

: **डॉ. चंचल सिंह**
विषय विशेषज्ञ, पौध संरक्षण, कृषि विज्ञान केंद्र, कृषि महाविद्यालय, बांदा कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, बांदा, उत्तर प्रदेश

	:	**डॉ हिमांशु त्रिवेदी** सह आचार्य एवं निदेशक स्कूल ऑफ़ एडवांस्ड एग्रीकल्चर साइंसेज़ एंड टेक्नोलॉजी छत्रपति शाहू जी महाराज विश्वविद्यालय कानपुर, (उ.प्र.)
	:	**प्रखर खरे** एम.एस.सी. उद्यान विज्ञान विभाग, शुआट्स, प्रयागराज (उ.प्र.)
पांडुलिपि संपादक	:	**स्निग्धा हल्दर** सहायक संपादक, एग्रो इण्डिया पब्लिकेशन, प्रयागराज, (उ.प्र.)
कंटैट लेखक/ स्तंभ लेखक	:	**डॉ. विशाल नाथ पाण्डेय** विशेष कार्य अधिकारी आई.सी.ए.आर., आई.ए.आर.आई, झारखण्ड, हजारीबाग (झारखण्ड)
फोटोग्राफी	:	**स्वप्निल सुभाष स्वामी** वेब एडिटर प्रितेश हलदार
प्रकाशक	:	**एग्रो इण्डिया पब्लिकेशन, प्रयागराज, (उ.प्र.)**
प्रकाशक	:	**Society for Advancement in Agriculture, Horticulture & Allied Sectors (SAAHAS)**

❖❖

ISSN No. 2583-3316

कृषि उद्यान दर्पण

इस पृष्ठ में

- पशु स्वास्थ्य प्रबंधन में पंचगव्य की भूमिकाः परंपरा से विज्ञान तक — 1 - 8
  विकास पाठक, रुचि तिवारी* एवं मीना गोस्वामी अवस्थी
- प्राकृतिक खेती द्वारा हल्दी की उन्नत उत्पादन तकनीक — 9 - 11
  मितल ए. दुधात
- स्वीट कॉर्न की वैज्ञानिक खेतीः एक विस्तृत मार्गदर्शिका — 12 - 14
  अचला सुमन*, अविनाश कुमारपटेल, प्रमिला, शिवम एवं शिव नारायण धाकर
- कृषि में कीटों का जैविक नियंत्रणः सतत् कृषि एवं पर्यावरण संरक्षण की दिशा में एक प्रभावी रणनीति — 15 - 17
  धनीराम मौर्य* एवं विवेक विश्वकर्मा
- कृषि में स्टार्टअप्स की भूमिका — 18 - 20
  अंजना गुप्ता* एवं रश्मि शुक्ला
- कटहल का *राइजोपस* फल गलन रोगः पहचान एवं एकीकृत निदान — 21 - 22
  आँचल कुमारी एवं राम प्रवेश प्रसाद*
- कोकेडामाः पुष्पविज्ञान में सजावटी पौध प्रदर्शन हेतु एक पर्यावरण-अनुकूल नवाचार — 23 - 24
  मेधा साहा*, अश्विनी कुमार और मेनकरानी
- अलौकिक भोजन के रूप में कोलोस्ट्रम — 25 - 28
  अंकित सिंह*, विकास चन्द्र, शिवराज कुमार वर्मा एवं पुष्पराज शिवहरे
- गृह वाटिकाः स्वास्थ्य और आत्मनिर्भरता का हरा-भरा मार्ग — 29 - 31
  तरुण प्रधान* एवं विवेक विश्वकमा
- खेती के जोखिम भरे पहलू एवं बचाव — 32 - 34
  नवीन कुमार शुक्ला*, मान्धाता सिंह एवं अशोक कुमार सिंह
- भारत में पुष्प विज्ञान : एक उभरता हुआ कृषि-व्यवसाय — 35 - 36
  खुशबू शर्मा एवं मेधा साहा*
- जलवायु परिवर्तन से प्रभावित फलदार फसलेंः किसानों के सामने नई चुनौती — 37 - 42
  कुलदीप कुमार शुक्ला*, सम्पूर्णा नन्द सिंह, लवकुश पाण्डेय, वर्तिका सिंह, नलिन कुमार सिंह काजल मिश्रा एवं ईशु शर्मा
- सब्जियों में समन्वित कीट प्रबंधन — 43 - 45
  फूलसिंह मरकाम*, प्रमोद कुमार नेताम एवं पीयूष कांत नेताम
- सब्जियों के पारिस्थिकीय तन्त्र के विश्लेषण पर आधारित पौध स्वास्थ्य प्रबन्धन — 46 - 49
  चंचल सिंह*, भूपेन्द्र कुमार सिंह, मनीष कुमार सिंह एवं अजीत सिंह

इस पत्रिका में प्रकाशित लेख एवं विचार लेखकों के निजी हैं। प्रकाशित/सम्पादक इसके लिये उत्तरदायी नहीं है। इस पत्रिका से सम्बन्धित वाद का निस्तारण क्षेत्र प्रयागराज होगा।*

- मशरूम उत्पादन का एफ.पी.ओ. माड्यूल: रोजगार एंव आय सृजन का प्रमुख माध्यम — 50 - 53
  रामप्रवेश प्रसाद*, रामप्रभात कुमार राय एवं दयाराम
- कृषि विस्तार में कृत्रिम बुद्धिमत्ताः उत्तर-पूर्वी पर्वतीय क्षेत्र में कृषि — 54 - 56
  पी.के. पाठक*, ए.के. मोहंती, ए.के. सिंघा एवं राम दयाल शर्मा
- श्री अन्न (मिलेट्सः) पोषण स्वास्थ्य एवं सतत् कृषि का आधार — 57 - 63
  वेद प्रकाश* एवं विवेक विश्वकर्मा
- क्रॉसेंड्रा की व्यावसायिक खेती — 64 - 66
  मेधा साह*, युगेश कुमार एवं योगिता पटेल
- प्रमुख सब्जियों के रोग एवं उनका प्रबंधन — 67 - 73
  सुनील कुमार*, प्रद्युम्न कुमार सिंह, शोभित यादव, आर्यन सिंह एवं अशोक कुमार
- वर्षा जल संचयन जल संकट के समाधान हेतु एक सतत् एवं प्रभावी प्रबंधन तकनीक — 74 - 77
  मोनिका कांत* एवं विवेक विश्वकर्मा
- धनिया की वैज्ञानिक उन्नत खेती — 78 - 79
  एस. एल. वास्केल* एवं ए. के. त्रिपाठी
- फूलों की खेती — 80 - 83
  अंजू पाल एवं विपुल असवाल*
- सतत् सब्जी उत्पादन के लिए नवीन तकनीकेंः हरित भविष्य की ओर बढ़ते कदम — 84 - 85
  शिव नारायण धाकड़* एवं दिव्या आरती
- ऑर्गेनिक मित्र मोबाइल ऐप: जैविक खेती की दिशा में एक डिजिटल क्रांति — 86 - 87
  अंजना गुप्ता* एवं रश्मि शुक्ला

इस पत्रिका में प्रकाशित लेख एवं विचार लेखकों के निजी हैं। प्रकाशित/सम्पादक इसके लिये उत्तरदायी नहीं है। इस पत्रिका से सम्बन्धित वाद का निस्तारण क्षेत्र प्रयागराज होगा।*

ISSN No. 2583-3316

पशु स्वास्थ्य प्रबंधन में पंचगव्य की भूमिकाः परंपरा से विज्ञान तक

विकास पाठक[1], रुचि तिवारी[2]* एवं मीना गोस्वामी अवस्थी[3]

[1]पशु चिकित्सा विज्ञान एवं पशुपालन महाविद्यालय, [2]पशु सूक्ष्मजीव विज्ञान विभाग, [3]पशुधन उत्पाद प्रौद्योगिकी विभाग, उ.प्र. पं. दीनदयाल उपाध्याय पशु चिकित्सा विज्ञान विश्वविद्यालय एवं गो-अनुसंधान संस्थान (DUVASU), मथुरा, उत्तर प्रदेश

पत्राचारकर्ताः ruchi.tiwari@upvetuniv.edu.in

परिचय

भारत की कृषि व्यवस्था में पशुपालन सदैव एक महत्वपूर्ण घटक रहा है। विशेष रूप से गौवंश न केवल दुग्ध उत्पादन का प्रमुख स्रोत रहा है, बल्कि कृषि, पोषण, ऊर्जा तथा ग्रामीण अर्थव्यवस्था में भी इसकी बहुआयामी भूमिका रही है (Kumar *et al.*, 2017)। भारतीय संस्कृति में गाय को विशेष महत्व प्राप्त होने के कारण उससे प्राप्त विभिन्न उत्पादों का उपयोग चिकित्सा एवं कृषि कार्यों में प्राचीन काल से होता आया है (Priyanka *et al.*, 2026)।

पंचगव्य की अवधारणा वैदिक साहित्य, आयुर्वेदिक ग्रंथों तथा पारंपरिक कृषि पद्धतियों में वर्णित मिलती है। 'पंच' अर्थात पाँच तथा 'गव्य' अर्थात गाय से प्राप्त पदार्थों के संयोजन से निर्मित यह मिश्रण भारतीय परंपरा में शुद्धिकरण, रोग-निवारण तथा स्वास्थ्य संवर्धन हेतु प्रयुक्त होता रहा है (Nene, 2005)। आयुर्वेद में पंचगव्य को शरीर की समग्र कार्यप्रणाली को संतुलित करने वाला माना गया है, जबकि पारंपरिक पशु चिकित्सा प्रणालियों में इसका उपयोग त्वचा रोगों, घावों, पाचन विकारों तथा अन्य स्वास्थ्य समस्याओं के प्रबंधन में किया जाता रहा है (Galav *et al.*, 2013)।

वर्तमान समय में एंटीमाइक्रोबियल प्रतिरोध, रासायनिक औषधियों के दुष्प्रभाव तथा जैविक पशुपालन की बढ़ती आवश्यकता ने प्राकृतिक विकल्पों की खोज को प्रोत्साहित किया है। इस संदर्भ में पंचगव्य पुनः वैज्ञानिकों, पशु चिकित्सकों तथा पशुपालकों का ध्यान आकर्षित कर रहा है। अनेक प्रारंभिक अध्ययनों से संकेत मिलता है कि पंचगव्य में ऐसे जैव सक्रिय घटक उपस्थित हैं जो पशुओं की प्रतिरक्षा एवं स्वास्थ्य को सुदृढ़ बनाने में सहायक हो सकते हैं (Dhama *et al.*, 2005)। अतः इसकी वैज्ञानिक उपयोगिता का मूल्यांकन समय की आवश्यकता है।

पंचगव्य की अवधारणा एवं संघटक

पंचगव्य की परिभाषा

पंचगव्य गाय से प्राप्त पाँच प्रमुख उत्पादों-गोदुग्ध, गोदधि, गोघृत, गोमूत्र एवं गोबर-का निर्धारित अनुपात में तैयार किया गया मिश्रण है। पारंपरिक रूप से इसका उपयोग धार्मिक, कृषि एवं चिकित्सीय उद्देश्यों के लिए किया जाता रहा है। आधुनिक दृष्टिकोण से पंचगव्य को एक जैविक बहुघटक प्रणाली माना जा सकता है, जिसमें विभिन्न पोषक, सूक्ष्मजीवी तथा जैव सक्रिय तत्व सम्मिलित होते हैं (Suresh *et al.*, 2011)।

पंचगव्य के घटक

गोदुग्ध (Milk)

गोदुग्ध उच्च गुणवत्ता वाले प्रोटीन, वसा, लैक्टोज, खनिज तथा विटामिनों का महत्वपूर्ण स्रोत है। इसमें उपस्थित जैव सक्रिय पेप्टाइड तथा प्रतिरक्षी कारक शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता को समर्थन प्रदान करते हैं (Fox and McSweeney, 2015)।

गोदधि (Curd)

गोदधि दुग्ध के किण्वन से प्राप्त उत्पाद है जिसमें लाभकारी लैक्टिक अम्ल जीवाणु प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं। ये सूक्ष्मजीव आंत्र स्वास्थ्य को बेहतर बनाने तथा पाचन क्रिया को सुचारु रखने में सहायक माने जाते हैं।

गोघृत (Ghee)

गोघृत में आवश्यक वसीय अम्ल, वसा में घुलनशील विटामिन तथा ऊर्जा प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होती है। आयुर्वेद में इसे शरीर पोषक तथा जैव सक्रिय यौगिकों के वाहक के रूप में वर्णित किया गया है (Galib *et al.*, 2008)।

गोमूत्र (Urine)

गोमूत्र पंचगव्य का सर्वाधिक अध्ययन किया गया घटक है। इसमें यूरिया, यूरिक अम्ल, खनिज, एंजाइम तथा अनेक वाष्पशील यौगिक पाए जाते हैं। विभिन्न अध्ययनों में इसके रोगाणुरोधी एवं प्रतिरक्षा-संशोधक गुणों का उल्लेख किया गया है (Randhawa and Kullar, 2011)।

गोबर (Dung)

गोबर जैविक पदार्थों, लाभकारी सूक्ष्मजीवों तथा खनिजों का समृद्ध स्रोत है। यह अनेक प्रकार के सूक्ष्मजीवों के लिए प्राकृतिक माध्यम का कार्य करता है तथा पारंपरिक चिकित्सा एवं कृषि प्रणालियों में महत्वपूर्ण स्थान रखता है (Nene, 2005)।

रासायनिक एवं जैविक संघटन

पोषक तत्व

पंचगव्य में कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, अमीनो अम्ल, खनिज, वसा, विटामिन तथा विभिन्न सूक्ष्म पोषक तत्व पाए जाते हैं। इन घटकों की मात्रा प्रयुक्त सामग्री एवं निर्माण विधि के अनुसार परिवर्तित हो सकती है।

सूक्ष्मजीव

किण्वन प्रक्रिया के दौरान पंचगव्य में लैक्टोबैसिलस, यीस्ट तथा अन्य लाभकारी सूक्ष्मजीव विकसित होते हैं। ये सूक्ष्मजीव जैव सक्रिय पदार्थों के निर्माण तथा स्वास्थ्य संवर्धन में योगदान दे सकते हैं (Suresh *et al.,* 2011)।

जैव सक्रिय यौगिक

पंचगव्य में फिनॉलिक यौगिक, कार्बनिक अम्ल, एंजाइम, प्रतिऑक्सीकारक तत्व तथा अन्य जैव सक्रिय अणु पाए जाते हैं। ये यौगिक इसके संभावित औषधीय गुणों के लिए उत्तरदायी माने जाते हैं (Dhama *et al.,* 2014)।

पशु स्वास्थ्य प्रबंधन की अवधारणा

पशु स्वास्थ्य प्रबंधन एक समग्र दृष्टिकोण है जिसका उद्देश्य पशुओं को स्वस्थ रखते हुए उनकी उत्पादकता, कल्याण तथा प्रजनन क्षमता को बनाए रखना है। इसमें रोग नियंत्रण, पोषण, आवास, जैव सुरक्षा तथा नियमित स्वास्थ्य निगरानी जैसे विभिन्न घटक सम्मिलित होते हैं (Radostits *et al.,* 2007)।

रोग निवारण

पशु स्वास्थ्य प्रबंधन का प्रमुख उद्देश्य रोगों की रोकथाम है। टीकाकरण, जैव सुरक्षा उपायों तथा प्रतिरक्षा संवर्धन के माध्यम से रोगों की घटनाओं को कम किया जा सकता है।

पोषण प्रबंधन

संतुलित आहार पशुओं के स्वास्थ्य एवं उत्पादन का आधार है। उचित पोषण से वृद्धि, दुग्ध उत्पादन, प्रजनन क्षमता तथा रोग प्रतिरोधकता में सुधार होता है।

प्रतिरक्षा संवर्धन

पशुओं की प्राकृतिक प्रतिरक्षा को मजबूत बनाना रोग नियंत्रण की महत्वपूर्ण रणनीति है। प्राकृतिक जैव सक्रिय पदार्थ, प्रोबायोटिक्स तथा पारंपरिक स्वास्थ्यवर्धक उत्पाद इस दिशा में सहायक हो सकते हैं।

प्रजनन स्वास्थ्य

उत्तम प्रजनन प्रबंधन से गर्भधारण दर, प्रसव सफलता तथा नवजात संतानों के स्वास्थ्य में सुधार होता है। प्रजनन स्वास्थ्य पशुधन की आर्थिक उपयोगिता से प्रत्यक्ष रूप से जुड़ा हुआ है।

उत्पादकता वृद्धि

स्वस्थ पशु बेहतर वृद्धि, दुग्ध उत्पादन, प्रजनन प्रदर्शन एवं कार्यक्षमता प्रदर्शित करते हैं। इसलिए स्वास्थ्य प्रबंधन पशुधन उत्पादन प्रणाली की स्थिरता एवं लाभप्रदता का प्रमुख आधार है।

पारंपरिक पशु चिकित्सा में पंचगव्य का उपयोग

भारतीय ग्रामीण समाज में पशु चिकित्सा की परंपरागत प्रणालियाँ सदियों से पशुधन स्वास्थ्य संरक्षण का आधार रही हैं। आधुनिक पशु चिकित्सा सुविधाओं के सीमित प्रसार के दौर में पशुपालक स्थानीय संसाधनों एवं पारंपरिक ज्ञान पर आधारित उपचार पद्धतियों का उपयोग करते थे। पंचगव्य ऐसी ही एक समन्वित पारंपरिक प्रणाली का महत्वपूर्ण घटक है, जिसका प्रयोग रोगों की रोकथाम, उपचार तथा स्वास्थ्य संवर्धन के लिए किया जाता रहा है (McCorkle, 1995; Galav *et al.,* 2013)।

एथ्नो-वेटेरिनरी (Ethnoveterinary) चिकित्सा

एथ्नो-वेटेरिनरी चिकित्सा (Ethnoveterinary Medicine) से तात्पर्य पशुपालकों द्वारा पीढ़ी-दर-पीढ़ी अर्जित और हस्तांतरित उस पारंपरिक ज्ञान से है जिसका उपयोग पशुओं के स्वास्थ्य प्रबंधन में किया जाता है। भारत के विभिन्न क्षेत्रों में गोमूत्र, गोबर तथा पंचगव्य आधारित मिश्रणों का उपयोग अनेक रोगों की रोकथाम एवं उपचार में प्रचलित रहा है (Mathias, 2004)।

पारंपरिक ज्ञान प्रणालियों में पंचगव्य को केवल औषधीय उत्पाद नहीं, बल्कि पशु शरीर की प्राकृतिक प्रतिरोधक क्षमता को बनाए रखने वाला जैविक टॉनिक माना जाता है। अनेक ग्रामीण समुदायों में इसे रोगमुक्ति के साथ-साथ स्वास्थ्य संवर्धन एवं उत्पादकता सुधार हेतु भी उपयोग किया जाता है (Nene, 2005)।

सामान्य रोगों में उपयोग

त्वचा रोग

पंचगव्य तथा विशेष रूप से गोमूत्र और गोबर आधारित

तैयारियों का उपयोग त्वचा संक्रमण, खुजली, डर्मेटाइटिस तथा फफूंदजनित रोगों में किया जाता रहा है। पारंपरिक मान्यता के अनुसार इन उत्पादों मंग उपस्थित क्षारीय तत्व एवं जैव सक्रिय यौगिक रोगजनक सूक्ष्मजीवों की वृद्धि को नियंत्रित करने में सहायक हो सकते हैं (Dhama *et al.,* 2014)। कुछ प्रयोगात्मक अध्ययनों में गोमूत्र आसव द्वारा जीवाणुओं एवं कवकों की वृद्धि पर अवरोधात्मक प्रभाव भी दर्ज किया गया है (Randhawa and Kullar, 2011)।

घाव प्रबंधन

ग्रामीण क्षेत्रों में गोघृत, गोमूत्र तथा गोबर से निर्मित मिश्रणों का उपयोग घावों की सफाई तथा ऊतक पुनर्निर्माण के लिए किया जाता रहा है। परंपरागत अनुभवों के अनुसार ये मिश्रण संक्रमण नियंत्रण के साथ घाव भरने की प्रक्रिया को तीव्र कर सकते हैं। कुछ आधुनिक अध्ययनों में भी गोमूत्र एवं घृत आधारित उत्पादों के ऊतक पुनर्जनन पर सकारात्मक प्रभावों की सूचना प्राप्त हुई है (Sharma *et al.,* 2005)।

पाचन विकार

अपच, अफारा, भूख में कमी तथा जठरांत्रीय असंतुलन जैसी स्थितियों में पंचगव्य का सीमित मात्रा में उपयोग कई क्षेत्रों में प्रचलित है। माना जाता है कि पंचगव्य में उपस्थित लाभकारी सूक्ष्मजीव तथा जैव सक्रिय पदार्थ आंत्र सूक्ष्मजीव संतुलन को बनाए रखने में सहायक हो सकते हैं (Suresh *et al.,* 2011)।

परजीवी नियंत्रण

कई एथ्नो-वेटेरिनरी अध्ययनों में गोमूत्र आधारित तैयारियों का उपयोग बाह्य एवं आंतरिक परजीवियों के नियंत्रण हेतु वर्णित किया गया है। यद्यपि इनके प्रभावों का पूर्ण वैज्ञानिक सत्यापन अभी अपेक्षित है, फिर भी प्रारंभिक अध्ययनों से कुछ परजीवियों के विरुद्ध जैविक सक्रियता के संकेत प्राप्त हुए हैं (Upadhyay *et al.,* 2015)।

ग्रामीण पशुपालन में प्रचलित प्रयोग

ग्रामीण पशुपालन प्रणालियों में पंचगव्य का उपयोग बहुआयामी रूप से किया जाता है। कई क्षेत्रों में इसे नवजात पशुओं के स्वास्थ्य संवर्धन, दुग्ध उत्पादन सुधार, प्रसवोत्तर देखभाल तथा सामान्य स्वास्थ्य टॉनिक के रूप में प्रयोग किया जाता है। जैविक पशुपालन अपनाने वाले किसानों द्वारा पंचगव्य का उपयोग प्रतिरक्षा संवर्धक पूरक के रूप में भी किया जा रहा है (Natarajan, 2008)। इन प्रयोगों का आधार मुख्यतः अनुभवजन्य ज्ञान है, जिसकी वैज्ञानिक पुष्टि भविष्य के अनुसंधानों का महत्वपूर्ण विषय है।

पंचगव्य के जैविक एवं चिकित्सीय गुण

पंचगव्य की जैविक सक्रियता उसके विभिन्न घटकों के संयुक्त प्रभाव का परिणाम मानी जाती है। इसमें पोषक तत्वों, लाभकारी सूक्ष्मजीवों, एंजाइमों, वाष्पशील यौगिकों तथा प्रतिऑक्सीकारक पदार्थों की उपस्थिति इसके संभावित चिकित्सीय गुणों को आधार प्रदान करती है (Dhama *et al.,* 2014)।

प्रतिरक्षा-वर्धक (Immunomodulatory) प्रभाव

पंचगव्य के प्रतिरक्षा-संशोधक गुणों पर अनेक अध्ययन किए गए हैं। विशेष रूप से गोमूत्र आसव के बारे में यह बताया गया है कि यह मैक्रोफेज गतिविधि, साइटोकाइन उत्पादन तथा कोशिकीय प्रतिरक्षा प्रतिक्रियाओं को प्रभावित कर सकता है (Ganguly *et al.,* 2013)। कुछ अध्ययनों में पंचगव्य के उपयोग से प्रतिरक्षा प्रतिक्रिया में सुधार तथा संक्रमणों के प्रति बेहतर प्रतिरोध की संभावना व्यक्त की गई है।

रोगाणुरोधी (Antimicrobial) गुण

विभिन्न शोधों में गोमूत्र एवं पंचगव्य तैयारियों द्वारा Escherichia coli, Staphylococcus aureus, Salmonella तथा कुछ कवकीय रोगजनकों के विरुद्ध अवरोधात्मक प्रभावों की सूचना दी गई है (Jarald *et al.,* 2008)। इन प्रभावों का संबंध फिनॉलिक यौगिकों, वाष्पशील अम्लों तथा अन्य जैव सक्रिय पदार्थों से जोड़ा जाता है।

एंटीऑक्सीडेंट प्रभाव

ऑक्सीडेटिव तनाव पशुओं में रोग संवेदनशीलता, प्रजनन समस्याओं तथा उत्पादकता में कमी का महत्वपूर्ण कारण माना जाता है। कुछ अध्ययनों में पंचगव्य के घटकों में प्रतिऑक्सीकारक क्षमता पाई गई है, जो मुक्त कणों को निष्क्रिय कर कोशिकीय क्षति को कम कर सकती है (Dhama *et al.,* 2014)। यह गुण विशेष रूप से तनावग्रस्त एवं उच्च उत्पादकता वाले पशुओं में उपयोगी हो सकता है।

घाव भरने की क्षमता

प्रयोगात्मक अध्ययनों में गोघृत तथा गोमूत्र आधारित तैयारियों के उपयोग से घाव भरने की गति में वृद्धि, कोलेजन निर्माण में सुधार तथा ऊतक पुनर्जनन में सकारात्मक प्रभाव देखे गए हैं (Sharma *et al.,* 2005)। इन परिणामों से संकेत मिलता है कि पंचगव्य के कुछ घटक ऊतक मरम्मत प्रक्रियाओं को प्रोत्साहित कर सकते हैं।

वृद्धि एवं उत्पादकता पर प्रभाव

कुक्कुट एवं पशुधन पर किए गए कुछ अध्ययनों में पंचगव्य पूरकता से शरीर भार वृद्धि, चारा उपयोग दक्षता तथा उत्पादन

पारंपरिक पशु चिकित्सा में पंचगव्य का उपयोग

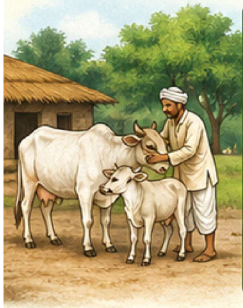

पंचगव्य क्या है?

पंचगव्य गौवंश से प्राप्त पाँच उत्पादों का समुच्चय है, जिनका पारंपरिक पशु चिकित्सा में उपयोग किया जाता है।

पंचगव्य के प्रमुख गुण

- रोग प्रतिरोधक क्षमता में वृद्धि
- रोगों की रोकथाम एवं उपचार में सहायक
- पाचन तंत्र को संतुलित रखना
- ऊतक पुनर्निर्माण में सहायक
- परजीवी नियंत्रण में सहायक
- स्वास्थ्य संवर्धन एवं उत्पादकता में सुधार

पारंपरिक पशु चिकित्सा में पंचगव्य के प्रमुख उपयोग

1. त्वचा रोग

गोमूत्र और गोबर आधारित तैयारियों का उपयोग खुजली, डर्मेटाइटिस, फफूंदजनित संक्रमण आदि में किया जाता है। इनमें उपस्थित क्षारीय तत्व और जैव सक्रिय यौगिक रोगजनक सूक्ष्मजीवों की वृद्धि को नियंत्रित करने में सहायक हो सकते हैं।

2. घाव प्रबंधन

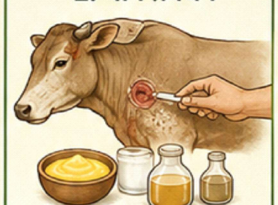

गोघृत, गोमूत्र तथा गोबर से निर्मित मिश्रणों का उपयोग घावों की सफाई, संक्रमण नियंत्रण और ऊतक पुनर्निर्माण के लिए किया जाता है। ये मिश्रण घाव भरने की प्रक्रिया को तीव्र कर सकते हैं।

3. पाचन विकार

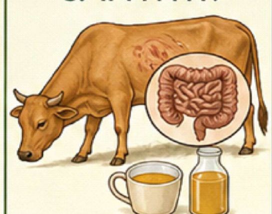

अपच, अफारा, भूख में कमी तथा जठरांत्रीय असंतुलन जैसी स्थितियों में पंचगव्य का सीमित मात्रा में उपयोग प्रचलित है। यह आंत्र सूक्ष्मजीव संतुलन को बनाए रखने में सहायक हो सकता है।

4. परजीवी नियंत्रण

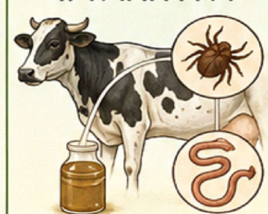

गोमूत्र आधारित तैयारियों का उपयोग बाहए एवं आंतरिक परजीवियों के नियंत्रण हेतु किया जाता है। प्रारंभिक अध्ययनों में कुछ परजीवियों के विरुद्ध जैविक सक्रियता के संकेत प्राप्त हुए हैं।

5. ग्रामीण पशुपालन में प्रचलित प्रयोग

निष्कर्ष

पंचगव्य भारतीय पारंपरिक पशु चिकित्सा की एक महत्वपूर्ण धरोहर है, जिसका उपयोग विभिन्न रोगों की रोकथाम, उपचार तथा स्वास्थ्य संवर्धन में किया जाता रहा है। वर्तमान वैज्ञानिक अध्ययन इनके जैविक, रोगनाशक एवं पुनर्जननकारी प्रभावों की पुष्टि कर रहे हैं। भविष्य में वैज्ञानिक सत्यापन एवं मानकीकरण द्वारा पंचगव्य आधारित उत्पाद पशुपालन में एक सुरक्षित, सस्ता एवं पर्यावरण अनुकूल विकल्प के रूप में स्थापित हो सकते हैं।

विशेषताएँ

- प्राकृतिक
- सुरक्षित एवं सस्ता
- पर्यावरण अनुकूल
- टिकाऊ पशु चिकित्सा
- एंटीमाइक्रोबियल एवं जैव सक्रिय गुणों से युक्त

प्रदर्शन में सुधार की सूचना मिली है (Ramesh *et al.*, 2013)। हालांकि विभिन्न अध्ययनों के परिणामों में भिन्नता पाई गई है, फिर भी यह क्षेत्र आगे के नियंत्रित अनुसंधानों के लिए महत्वपूर्ण संभावनाएँ प्रस्तुत करता है।

वैज्ञानिक दृष्टिकोण से पंचगव्य

पिछले दो दशकों में पंचगव्य को पारंपरिक ज्ञान की सीमाओं से निकालकर वैज्ञानिक कसौटियों पर परखने के प्रयास तेज हुए हैं। आधुनिक अनुसंधान इसका मूल्यांकन जैव रासायनिक, सूक्ष्मजीवविज्ञानी, प्रतिरक्षाविज्ञानी तथा चिकित्सीय दृष्टिकोणों से कर रहे हैं।

उपलब्ध वैज्ञानिक शोध एवं प्रमाण

अब तक प्रकाशित अधिकांश अध्ययनों में पंचगव्य अथवा उसके व्यक्तिगत घटकों के रोगाणुरोधी, प्रतिरक्षा-संशोधक तथा प्रतिऑक्सीकारक गुणों की जांच की गई है (Dhama *et al.*, 2014)। यद्यपि अनेक अध्ययन सकारात्मक परिणाम दर्शाते हैं, परंतु अधिकांश शोध सीमित नमूना आकार तथा विभिन्न कार्यप्रणालियों पर आधारित हैं, जिसके कारण व्यापक निष्कर्ष निकालना अभी कठिन है।

इन-विट्रो एवं इन-विवो अध्ययन

इन-विट्रो अध्ययनों में पंचगव्य एवं गोमूत्र आसव ने विभिन्न जीवाणुओं तथा कवकों की वृद्धि को प्रभावित करने की क्षमता प्रदर्शित की है (Jarald *et al.*, 2008)। वहीं इन-विवो अध्ययनों में प्रतिरक्षा प्रतिक्रिया, वृद्धि प्रदर्शन तथा कुछ रोग स्थितियों पर इसके प्रभावों का परीक्षण किया गया है। कई प्रयोगों में सकारात्मक संकेत मिले हैं, हालांकि परिणामों की पुनरावृत्ति एवं मानकीकरण अभी आवश्यक है।

पशुओं में किए गए परीक्षण

कुक्कुट, बछड़ों तथा छोटे जुगाली करने वाले पशुओं पर किए गए कुछ नियंत्रित अध्ययनों में पंचगव्य पूरकता से स्वास्थ्य एवं प्रदर्शन संकेतकों में सुधार की रिपोर्ट की गई है (Ramesh *et al.*, 2013)। कुछ अध्ययनों में रोग प्रतिरोधक क्षमता तथा आंत्र स्वास्थ्य में भी सकारात्मक प्रभाव देखे गए हैं। हालांकि बहु-केंद्रित और दीर्घकालिक परीक्षणों की संख्या अभी सीमित है।

अनुसंधान की वर्तमान स्थिति

वर्तमान में पंचगव्य अनुसंधान एक संक्रमणकालीन अवस्था में है, जहाँ पारंपरिक अनुभवजन्य ज्ञान को वैज्ञानिक प्रमाणों से जोड़ने का प्रयास किया जा रहा है। भविष्य के अनुसंधानों में उत्पादों का मानकीकरण, सक्रिय घटकों की पहचान, कार्यविधि (mechanism of action) का अध्ययन तथा बड़े पैमाने पर नियंत्रित नैदानिक परीक्षणों की आवश्यकता है। यदि इन पहलुओं पर व्यवस्थित शोध किया जाए, तो पंचगव्य पशु स्वास्थ्य प्रबंधन में एक पूरक जैविक उपकरण के रूप में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर सकता है।

पशु स्वास्थ्य प्रबंधन में पंचगव्य के अनुप्रयोग

पशु स्वास्थ्य प्रबंधन में पंचगव्य के संभावित उपयोगों को लेकर पिछले कुछ वर्षों में विशेष रुचि बढ़ी है। पारंपरिक अनुभवों के साथ-साथ वैज्ञानिक अध्ययनों से प्राप्त प्रारंभिक साक्ष्य यह संकेत देते हैं कि पंचगव्य विभिन्न पशुपालन प्रणालियों में स्वास्थ्य संवर्धन, रोग प्रतिरोधकता तथा उत्पादकता सुधार के पूरक साधन के रूप में उपयोगी हो सकता है (Dhama *et al.*, 2014)। यद्यपि इसके अधिकांश अनुप्रयोगों के लिए अभी व्यापक वैज्ञानिक सत्यापन अपेक्षित है, तथापि उपलब्ध जानकारी इसके बहुआयामी उपयोग की संभावनाओं को रेखांकित करती है।

डेयरी पशुओं में

डेयरी पशुओं में पंचगव्य का उपयोग मुख्यतः प्रतिरक्षा सुदृढ़ीकरण, प्रजनन स्वास्थ्य सुधार तथा दुग्ध उत्पादन को समर्थन देने के उद्देश्य से किया जाता है। कुछ क्षेत्रीय अध्ययनों में पंचगव्य आधारित पूरकों के उपयोग से चयापचय स्वास्थ्य एवं सामान्य शारीरिक स्थिति में सुधार की सूचना प्राप्त हुई है (Ramesh *et al.*, 2013)। इसके अतिरिक्त, प्रसवोत्तर अवधि में पशुओं की पुनर्प्राप्ति एवं स्वास्थ्य प्रबंधन के लिए भी पंचगव्य आधारित तैयारियों का उपयोग किया जाता रहा है। हालांकि दुग्ध उत्पादन पर इसके प्रत्यक्ष प्रभावों के संबंध में उपलब्ध वैज्ञानिक प्रमाण अभी सीमित और विविधतापूर्ण हैं।

छोटे जुगाली करने वाले पशुओं में

भेड़ एवं बकरी पालन में पंचगव्य का उपयोग स्वास्थ्य संवर्धन, पाचन क्रिया में सुधार तथा रोग प्रतिरोधक क्षमता को बनाए रखने हेतु किया जाता है। कुछ अध्ययनों में छोटे जुगाली करने वाले पशुओं में पंचगव्य पूरकता के पश्चात बेहतर वृद्धि प्रदर्शन तथा स्वास्थ्य संकेतकों में सुधार के संकेत प्राप्त हुए हैं (Kumar *et al.*, 2019)। ग्रामीण क्षेत्रों में इसका उपयोग विशेष रूप से तनाव, ऋतु परिवर्तन तथा संक्रमण के जोखिम वाले समय में किया जाता है।

कुक्कुट पालन में

कुक्कुट उद्योग में एंटीबायोटिक विकल्पों की खोज के संदर्भ में पंचगव्य विशेष रुचि का विषय बना है। विभिन्न प्रयोगात्मक अध्ययनों में पंचगव्य पूरकता से शरीर भार वृद्धि, चारा रूपांतरण दक्षता तथा कुछ प्रतिरक्षा मानकों में सुधार की सूचना प्राप्त हुई

है (Selvaraj *et al.,* 2007)। साथ ही, आंत्र सूक्ष्मजीव संतुलन को बनाए रखने में इसकी संभावित भूमिका पर भी अध्ययन किए जा रहे हैं। हालांकि व्यावसायिक स्तर पर इसके उपयोग के लिए और अधिक नियंत्रित परीक्षणों की आवश्यकता है।

जैविक पशुपालन प्रणालियों में

जैविक एवं प्राकृतिक पशुपालन प्रणालियों में पंचगव्य को एक महत्वपूर्ण जैविक संसाधन माना जाता है। यह रासायनिक औषधियों एवं कृत्रिम वृद्धि प्रवर्तकों पर निर्भरता को कम करने की अवधारणा के अनुरूप है। जैविक फार्मों में पंचगव्य का उपयोग स्वास्थ्य पूरक, प्रतिरक्षा संवर्धक तथा प्राकृतिक प्रबंधन साधन के रूप में किया जाता है (Natarajan, 2008)। इस प्रकार यह सतत एवं पर्यावरण-अनुकूल पशुपालन प्रणालियों के लिए एक संभावित विकल्प प्रस्तुत करता है।

पंचगव्य एवं सतत पशुपालन

सतत पशुपालन का उद्देश्य उत्पादन, पर्यावरण संरक्षण, पशु कल्याण तथा आर्थिक स्थिरता के मध्य संतुलन स्थापित करना है। पंचगव्य इस दृष्टिकोण में एक संभावित जैविक उपकरण के रूप में उभर रहा है क्योंकि यह स्थानीय संसाधनों पर आधारित, अपेक्षाकृत कम लागत वाला तथा बहुउद्देशीय उत्पाद है।

एंटीबायोटिक उपयोग में कमी की संभावना

विश्व स्तर पर एंटीमाइक्रोबियल प्रतिरोध (Antimicrobial Resistance; AMR) एक गंभीर सार्वजनिक स्वास्थ्य चुनौती बन चुका है। यदि पंचगव्य के प्रतिरक्षा-संशोधक एवं रोगाणुरोधी गुणों का वैज्ञानिक रूप से पर्याप्त सत्यापन हो जाता है, तो यह रोगों की रोकथाम एवं स्वास्थ्य संवर्धन में सहायक पूरक के रूप में एंटीबायोटिक उपयोग की आवश्यकता को आंशिक रूप से कम कर सकता है (WHO, 2023)। हालांकि इसे एंटीबायोटिक का प्रत्यक्ष विकल्प नहीं माना जाना चाहिए, बल्कि समेकित स्वास्थ्य प्रबंधन रणनीति के एक घटक के रूप में देखा जाना चाहिए।

जैविक एवं प्राकृतिक पशुपालन

पंचगव्य जैविक पशुपालन के मूल सिद्धांतों के अनुरूप है क्योंकि इसका निर्माण प्राकृतिक स्रोतों से होता है तथा इसमें कृत्रिम रसायनों का प्रयोग नहीं किया जाता। इसके उपयोग से पशुपालकों को स्थानीय स्तर पर उपलब्ध संसाधनों का बेहतर उपयोग करने का अवसर मिलता है, जिससे उत्पादन प्रणाली अधिक आत्मनिर्भर बन सकती है (IFOAM, 2022)।

पर्यावरणीय लाभ

पंचगव्य का उपयोग गोबर एवं गोमूत्र जैसे पशु अपशिष्टों के मूल्यवर्धन का अवसर प्रदान करता है। इससे अपशिष्ट प्रबंधन में सुधार, जैविक संसाधनों का पुनर्चक्रण तथा पर्यावरणीय प्रदूषण में कमी की संभावना उत्पन्न होती है। इसके अतिरिक्त, प्राकृतिक संसाधनों के उपयोग को बढ़ावा देकर यह परिपत्र जैव-अर्थव्यवस्था (Circular Bioeconomy) की अवधारणा को भी समर्थन देता है।

ग्रामीण अर्थव्यवस्था में योगदान

पंचगव्य आधारित उत्पादों के उत्पादन एवं विपणन से ग्रामीण क्षेत्रों में अतिरिक्त आय सृजन की संभावनाएँ विकसित हो सकती हैं। छोटे एवं सीमांत पशुपालकों के लिए यह स्थानीय स्तर पर उपलब्ध संसाधनों के माध्यम से मूल्य संवर्धन का एक प्रभावी साधन बन सकता है। इससे ग्रामीण उद्यमिता, रोजगार सृजन तथा आत्मनिर्भरता को प्रोत्साहन मिल सकता है (Kumar *et al.,* 2017)।

चुनौतियाँ एवं सीमाएँ

यद्यपि पंचगव्य के संभावित लाभों के संबंध में पर्याप्त रुचि विकसित हुई है, तथापि इसके व्यापक वैज्ञानिक एवं व्यावसायिक उपयोग के मार्ग में अनेक चुनौतियाँ विद्यमान हैं।

मानकीकरण का अभाव

पंचगव्य की संरचना, निर्माण विधि तथा संघटक अनुपात विभिन्न क्षेत्रों में भिन्न-भिन्न पाए जाते हैं। इस कारण विभिन्न अध्ययनों के परिणामों में भी पर्याप्त अंतर देखने को मिलता है। वैज्ञानिक उपयोग हेतु उत्पाद का मानकीकरण अत्यंत आवश्यक है (Dhama *et al.,* 2014)।

गुणवत्ता नियंत्रण

कच्चे पदार्थों की गुणवत्ता, निर्माण परिस्थितियाँ तथा भंडारण अवधि पंचगव्य की जैविक सक्रियता को प्रभावित कर सकती हैं। यदि गुणवत्ता नियंत्रण के उपयुक्त मानक विकसित नहीं किए जाते, तो उत्पाद की प्रभावशीलता एवं सुरक्षा प्रभावित हो सकती है।

वैज्ञानिक सत्यापन की आवश्यकता

अनेक दावों का आधार अभी भी अनुभवजन्य एवं पारंपरिक ज्ञान पर आधारित है। नियंत्रित नैदानिक परीक्षणों, बहु-केंद्रीय अध्ययनों तथा कार्यविधि-आधारित अनुसंधानों की संख्या अभी सीमित है। इसलिए व्यापक वैज्ञानिक सत्यापन की आवश्यकता बनी हुई है (Randhawa and Kullar, 2011)।

नियामक एवं नीतिगत पहलू

पंचगव्य आधारित पशु स्वास्थ्य उत्पादों के लिए स्पष्ट नियामक ढाँचे का अभाव है। इनके पंजीकरण, गुणवत्ता नियंत्रण, प्रभावकारिता मूल्यांकन तथा सुरक्षा परीक्षणों हेतु उपयुक्त दिशानिर्देश विकसित किए जाने की आवश्यकता है। इससे वैज्ञानिक स्वीकृति एवं

व्यावसायिक उपयोग को बढ़ावा मिल सकता है।

भविष्य की संभावनाएँ

पंचगव्य अनुसंधान वर्तमान में एक ऐसे चरण में है जहाँ पारंपरिक अनुभवों को आधुनिक वैज्ञानिक प्रमाणों के साथ जोड़ने की आवश्यकता है। यदि यह प्रक्रिया सफलतापूर्वक आगे बढ़ती है, तो पशु स्वास्थ्य प्रबंधन में इसके उपयोग की व्यापक संभावनाएँ विकसित हो सकती हैं।

साक्ष्य-आधारित पशु चिकित्सा में भूमिका

भविष्य में पंचगव्य को साक्ष्य-आधारित पशु चिकित्सा (Evidence-Based Veterinary Medicine) के सिद्धांतों के अनुरूप वैज्ञानिक रूप से प्रमाणित कर पूरक स्वास्थ्य प्रबंधन साधन के रूप में विकसित किया जा सकता है। इसके लिए उच्च गुणवत्ता वाले नियंत्रित परीक्षणों एवं मेटा-विश्लेषणों की आवश्यकता होगी।

पंचगव्य आधारित वेटेरिनरी उत्पाद

मानकीकृत पंचगव्य आधारित फीड एडिटिव्स, प्रोबायोटिक पूरक, प्रतिरक्षा-वर्धक उत्पाद, त्वचा उपचार फॉर्मुलेशन तथा जैविक स्वास्थ्य संवर्धक विकसित किए जा सकते हैं। इससे पारंपरिक ज्ञान का आधुनिक तकनीकी रूपांतरण संभव होगा।

अनुसंधान एवं नवाचार के क्षेत्र

भविष्य के अनुसंधानों में सक्रिय जैव अणुओं की पहचान, मेटाबोलोमिक्स, जीन अभिव्यक्ति विश्लेषण, माइक्रोबायोम अध्ययन तथा नैनो-प्रौद्योगिकी आधारित अनुप्रयोगों पर विशेष ध्यान दिया जा सकता है। इससे पंचगव्य की कार्यविधि को वैज्ञानिक रूप से समझने में सहायता मिलेगी।

One Health एवं Sustainable Development Goals के संदर्भ में महत्व

पंचगव्य की अवधारणा पशु स्वास्थ्य, मानव स्वास्थ्य एवं पर्यावरणीय स्वास्थ्य के मध्य अंतर्संबंधों को बल प्रदान करती है। यह 'One Health' दृष्टिकोण के अनुरूप है, जिसमें रोग नियंत्रण, जैव विविधता संरक्षण तथा सतत उत्पादन प्रणालियों को एकीकृत रूप से देखा जाता है (FAO, WHO and WOAH, 2022)। साथ ही, यह संयुक्त राष्ट्र के कई सतत विकास लक्ष्यों (SDGs), विशेषकर SDG-2 (Zero Hunger), SDG-3 (Good Health and Well-being) तथा SDG-12 (Responsible Consumption and Production) के साथ भी सामंजस्य स्थापित करता है।

निष्कर्ष

पंचगव्य भारतीय परंपरागत ज्ञान प्रणाली की एक महत्वपूर्ण विरासत है, जिसने सदियों से कृषि एवं पशुपालन में बहुआयामी भूमिका निभाई है। वर्तमान वैज्ञानिक युग में इसके संभावित जैविक एवं चिकित्सीय गुणों के कारण पुनः रुचि उत्पन्न हुई है। उपलब्ध शोध संकेत देते हैं कि पंचगव्य में प्रतिरक्षा-संशोधन, रोगाणुरोधी सक्रियता, प्रतिऑक्सीकारक प्रभाव तथा स्वास्थ्य संवर्धन की संभावनाएँ विद्यमान हैं। हालांकि इन दावों की व्यापक वैज्ञानिक पुष्टि अभी अपेक्षित है।

परंपरागत ज्ञान एवं आधुनिक विज्ञान का समन्वय पंचगव्य के वास्तविक मूल्यांकन का आधार बन सकता है। मानकीकरण, गुणवत्ता नियंत्रण तथा नियंत्रित वैज्ञानिक परीक्षणों के माध्यम से इसके प्रभावों की पुष्टि की जानी चाहिए। यदि ऐसा किया जाता है, तो पंचगव्य पशु स्वास्थ्य प्रबंधन में एक पूरक, पर्यावरण-अनुकूल एवं सतत विकल्प के रूप में महत्वपूर्ण योगदान दे सकता है।

अंततः, पंचगव्य केवल एक पारंपरिक उत्पाद नहीं, बल्कि स्थानीय संसाधनों पर आधारित एक ऐसी अवधारणा है जिसमें सतत पशुपालन, ग्रामीण विकास तथा One Health दृष्टिकोण को एकीकृत करने की क्षमता निहित है। भविष्य में वैज्ञानिक प्रमाणों के सुदृढ़ आधार पर यह पशु स्वास्थ्य प्रबंधन की समग्र रणनीतियों का महत्वपूर्ण अंग बन सकता है।

संदर्भ

Dhama, K., Chakraborty, S., Mahima et al. (2014). Panchgavya Therapy (Cowpathy) in safeguarding health of animals and humans. Research Opinions in Animal and Veterinary Sciences, 4(3): 170–178.

Dhama, K., Rathore, R., Chauhan, R.S. and Tomar, S. (2005). Panchgavya: An overview. International Journal of Cow Science, 1(1), 1–15.

FAO, WHO and WOAH. (2022). One Health Joint Plan of Action 2022–2026. Rome.

Fox, P.F. and McSweeney, P.L.H. (2015). Dairy Chemistry and Biochemistry. Springer, New York.

Galav, P., Jain, M., Katewa, S.S. and Galav, A. (2013). Traditional veterinary medicines used by livestock owners. Indian Journal of Traditional Knowledge, 12(1), 47–55.

Galib, R., Prajapati, P.K., Patgiri, B.J. and Harisha, C.R. (2008). Therapeutic potentials of Ghrita.

AYU, 29(4), 82–87.

Ganguly, S., Prasad, A. and Sharma, V. (2013). Role of cow urine in animal health and disease management. Journal of Biological Sciences, 13: 1-7

IFOAM. (2022). Principles of Organic Agriculture. International Federation of Organic Agriculture Movements, Germany.

Jarald, E., Edwin, S. and Tiwari, V. (2008). Antimicrobial activities of cow urine. Ancient Science of Life, 28(2): 15–18.

Kumar, R., Singh, V. and Yadav, S. (2019). Traditional livestock healthcare practices in small ruminants. Indian Journal of Small Ruminants, 25(2): 156–162.

Kumar, S., Kumar, B. and Gupta, J. (2017). Role of livestock in Indian economy. Indian Journal of Animal Sciences, 87(1), 1–7.

Mathias, E. (2004). Ethnoveterinary Medicine: Harnessing its potential. Veterinary Bulletin, 74(8): 27–37.

McCorkle, C.M. (1995). Back to the future: Lessons from ethnoveterinary research. Agriculture and Human Values, 12: 52–80.

Natarajan, K. (2008). Panchagavya: A Manual. Other India Press, Goa.

Nene, Y.L. (2005). The Concept and Utility of Panchagavya. Asian Agri-History Foundation, Secunderabad.

Pathak, M.L. and Kumar, A. (2013). Cow praising and importance of Panchgavya as medicine. Journal of Pharmacy and Biological Sciences, 5(5), 01–07.

Priyanka, Kishori Lal Sharma, Shivam Mahajan. (2026). Panchagavya as a Prebiotic and Bioenhancer: Bridging Ayurveda and Microbiome Science. J Ayurveda Integr Med Sci., 10(12):298-302.

Radostits, O.M., Gay, C.C., Hinchcliff, K.W. and Constable, P.D. (2007). Veterinary Medicine: A Textbook of the Diseases of Cattle, Horses, Sheep, Pigs and Goats. 10th Ed., Saunders Elsevier.

Ramesh, P., Panwar, N.R. and Singh, A.B. (2013). Effect of Panchagavya on livestock and poultry productivity. Indian Journal of Animal Nutrition, 30(3): 231–236.

Randhawa, G.K. and Kullar, J.S. (2011). Biochemical and clinical perspectives of cow urine. Journal of Intercultural Ethnopharmacology, 1(1), 1–7.

Randhawa, G.K. and Kullar, J.S. (2011). Biochemical and clinical perspectives of cow urine. Journal of Intercultural Ethnopharmacology, 1(1): 1–7.

Selvaraj, P., Shanmugam, M. and Babu, M. (2007). Evaluation of Panchagavya in poultry production systems. Tamil Nadu Journal of Veterinary and Animal Sciences, 3(2): 51-55.

Sharma, S.D., Chauhan, R.S. and Agrawal, D.K. (2005). Therapeutic efficacy of cow-derived products in wound healing. Indian Cow, 2: 25-31.

Suresh, K., Reddy, K.A. and Reddy, P.N. (2011). Microbial composition and biological properties of Panchagavya. Karnataka Journal of Agricultural Sciences, 24(4): 535–536.

Suresh, K., Reddy, K.A. and Reddy, P.N. (2011). Studies on microbial composition of Panchagavya. Karnataka Journal of Agricultural Sciences, 24(4), 535–536.

Upadhyay, R.K., Dwivedi, P. and Ahmad, S. (2015). Ethnoveterinary approaches in parasite management of livestock. Journal of Parasitic Diseases, 39(4): 678–685.

World Health Organization (WHO). (2023). Global Antimicrobial Resistance and Use Surveillance System (GLASS) Report. Geneva.

❖❖

ISSN No. 2583-3316

प्राकृतिक खेती द्वारा हल्दी की उन्नत उत्पादन तकनीक

मितल ए. दुधात

उद्यान विज्ञान विभाग, कृषि महाविद्यालय, जूनागढ़ कृषि विश्वविद्यालय, जूनागढ़, गुजरात

पत्राचारकर्ता: madudhat@jau.in

परिचय

वर्तमान समय में प्राकृतिक कृषि को बढ़ावा देने के प्रयास किए जा रहे हैं, क्योंकि इसमें रासायनिक विषैले पदार्थों का उपयोग नहीं होता तथा मिट्टी की उर्वरता में वृद्धि होती है। इससे आने वाली पीढ़ियों को उपजाऊ भूमि विरासत में मिल सकेगी। प्राकृतिक खेती के परिणाम अत्यंत संतोषजनक पाए गए हैं।

वर्तमान में विश्वभर में विभिन्न प्रकार के विषाणुजनित रोगों का प्रभाव बढ़ रहा है। इनसे बचाव हेतु प्राकृतिक रूप से उगाई गई हल्दी की मांग निरंतर बढ़ रही है। वैदिक एवं आयुर्वेदिक ग्रंथो में हल्दी को महा औषधि मन गया है यह एंटी बैक्टीरियल एवं रक्त शोधक है। हल्दी के औषधीय गुणों तथा बहुउपयोगिता के कारण भारत के साथ-साथ अन्य देशों में भी इसका उपयोग बढ़ रहा है। हल्दी एक महत्वपूर्ण मसाला एवं नकदी फसल है, जिसका वानस्पतिक नाम कुरकुमा लोंगा *Curcuma longa* है और यह जिंजीबेरेसी कुल का सदस्य है विशेष रूप से इसकी जड़ो का उपयोग मसलो और औषधियों में किया जाता है।

भारत विश्व में लगभग 80% हल्दी का उत्पादन करता है, परंतु केवल 15–20% का ही निर्यात किया जाता है। देश में इसका उत्पादन मुख्यतः तमिलनाडु, केरल, ओडिशा, पश्चिम बंगाल एवं उत्तर-पूर्वी राज्यों में होता है।

जलवायु, मृदा चयन एवं भूमि की तैयारी

हल्दी की फसल के लिए गर्म एवं आर्द्र जलवायु अत्यंत अनुकूल होती है। मध्यम वर्षा वाली लंबी अवधि का मानसून इसकी वृद्धि के लिए लाभकारी माना जाता है। वर्षा ऋतु में फसल का विकास अच्छा होता है, जबकि शीत ऋतु के आगमन पर इसकी वृद्धि धीमी या रुकसी जाती है।

हल्दी की खेती के लिए अच्छी जल निकास वाली तथा पर्याप्त जैविक पदार्थों से युक्त दोमट, मध्यम, काली अथवा बलुई दोमट एवं उपजाऊ मिट्टी उपयुक्त रहती है। यदि खेत में हरी खाद, मल्चिंग तथा सिंचाई की उचित व्यवस्था उपलब्ध हो, तो हल्दी की सफल खेती की जा सकती है।

भूमि की तैयारी के लिए सामान्यतः 6 से 7 इंच गहराई तक जुताई की जाती है। इसके बाद करबी एवं समतलीकरण द्वारा मिट्टी के ढेलों को तोड़कर उसे भुरभुरी एवं मुलायम बनाया जाता है। भूमि की उर्वरता एवं संरचना सुधारने के लिए नदी या तालाब की गाद (सिल्ट) का उपयोग करना लाभकारी होता है।

रोपण के लिए लगभग 4 फीट की दूरी पर गादी क्यारे (उठे हुए बेड) तैयार किए जाते हैं तथा हल्दी की दो कतारों में बुवाई की जाती है। पौधे से पौधे की दूरी लगभग 3 इंच रखी जाती है। हल्दी के साथ सहफसल के रूप में सरगवा (ड्रमस्टिक) लेना भी लाभकारी रहता है।

भूमि की तैयारी के समय प्रति हेक्टेयर 5 से 6 टन घन जीवामृत तथा 2 से 3 टन अरंडी की खली मिट्टी में मिलाना उपयुक्त रहता है, जिससे मिट्टी की उर्वरता बढ़ती है और फसल की वृद्धि बेहतर होती है।

हल्दी की उन्नत किस्में

हल्दी की कई उन्नत एवं स्थानीय किस्में उपलब्ध हैं। किस्म का चयन विभिन्न कारकों पर निर्भर करता है, जैसे कि बीज की उपलब्धता, अंतिम उपयोग (जैसे पाउडर, औषधीय उपयोग,

कर्क्यूमिन निष्कर्षण) तथा बाजार में सीधे विक्रय की आवश्यकता।

हल्दी की प्रमुख उन्नत किस्मों में सुगंधम, गुजरात हल्दी-1, गुजरात नवसारी हल्दी-2, गुजरात नवसारी हल्दी-3 (पीतांबरी) तथा केसर शामिल हैं, जिन्हें खेती के लिए अनुशंसित किया जाता है।

सुगंधम किस्म स्थानीय किस्मों की तुलना में लगभग 67 प्रतिशत अधिक उत्पादन देती है। वहीं, गुजरात हल्दी-1 किस्म सुगंधम से लगभग 17 प्रतिशत अधिक उत्पादन देने के साथ-साथ गांठ सड़न रोग के प्रति प्रतिरोधक क्षमता भी रखती है।

यदि कम अवधि में पकने वाली किस्मों की आवश्यकता हो, तो सुदर्शन एवं सुगुणा किस्में उपयुक्त विकल्प हैं।

रोपण विधि एवं दूरी

मिट्टी के प्रकार के अनुसार हल्दी की रोपाई विभिन्न विधियों से की जाती है। दोमट भूमि में सपाट क्यारा विधि उपयुक्त होती है, जबकि काली मिट्टी, जहाँ जलभराव की संभावना अधिक होती है, वहाँ गादी क्यारा (उठे हुए बेड) या नाली पद्धति अपनाना बेहतर रहता है। सपाट क्यारा विधि में कतार से कतार की दूरी 30 सेमी तथा पौधे से पौधे की दूरी 15 सेमी. रखी जाती है। नाली पद्धति में 30–45 सेमी. चौड़ी नालियाँ बनाकर 15–20 सेमी. की दूरी पर गांठों की रोपाई की जाती है। गादी क्यारा पद्धति में 55–60 सेमी. चौड़े बेड पर 25 सेमी. दूरी रखी जाती है, जिससे जल निकास सुचारू रहता है। फलदार बागानों जैसे आम, चीकू एवं केला में भी कतारों के बीच हल्दी को अंतरवर्ती फसल के रूप में उगाकर अतिरिक्त आय प्राप्त की जा सकती है।

बीज मात्रा, बीज उपचार एवं बुवाई का समय

रोपण के लिए 25 से 30 ग्राम वजन एवं 5 से 7 सेमी. लंबाई वाली मातृ गांठ या अंगुली गांठ का चयन किया जाता है। प्रति हेक्टेयर लगभग 2,500 से 2,800 किलोग्राम बीज (गांठ) की आवश्यकता होती है।

मृदा जनित रोगों के नियंत्रण हेतु बीजों का उपचार बीजामृत से करना आवश्यक है, जिससे फसल की प्रारंभिक अवस्था में रोगों का प्रकोप कम होता है और अंकुरण बेहतर होता है।

हल्दी की बुवाई के लिए आदर्श समय 20 मई से 15 जून के मध्य माना जाता है, जो मुख्यतः खेत में उपलब्ध नमी एवं सिंचाई की सुविधा पर निर्भर करता है।

सिंचाई प्रबंधन एवं जीवामृत छिड़काव कार्यक्रम

हल्दी एक दीर्घावधि फसल है, इसलिए इसे नियमित सिंचाई की आवश्यक होती है। वर्षा की कमी होने पर सिंचाई अवश्य करें। सामान्यतः ग्रीष्म ऋतु में 8–10 दिनों तथा शीत ऋतु में 12–15 दिनों के अंतराल पर सिंचाई करनी चाहिए। ड्रिप सिंचाई अपनाने से जल की बचत के साथ पौधों को संतुलित नमी मिलती है।

जीवामृत छिड़काव का समय-पत्रक

- **प्रथम छिड़कावः** 5 लीटर जीवामृत को 100 लीटर पानी में मिलाकर रोपाई के 15 दिनों बाद छिड़काव करें।
- **द्वितीय छिड़कावः** 20 लीटर जीवामृत को 150 लीटर पानी में मिलाकर प्रथम छिड़काव के 21 दिनों बाद करें।
- **तृतीय छिड़कावः** 20 लीटर जीवामृत को 200 लीटर पानी में मिलाकर द्वितीय छिड़काव के 21 दिनों बाद करें।
- **चतुर्थ छिड़कावः** 5 लीटर खट्टी छाछ को 200 लीटर पानी में मिलाकर तृतीय छिड़काव के 21 दिनों बाद करें।
- **पंचम छिड़कावः** 20 लीटर जीवामृत को 200 लीटर पानी में मिलाकर चतुर्थ छिड़काव के 21 दिनों बाद करें।
- **षष्ठ छिड़कावः** 20 लीटर जीवामृत को 200 लीटर पानी में मिलाकर पंचम छिड़काव के 21 दिनों बाद करें।

हल्दी की खेती में अंतरवर्ती फसलें

हल्दी की फसल के साथ विभिन्न अंतरवर्ती फसलें लेकर भूमि का बेहतर उपयोग एवं अतिरिक्त आय की प्राप्ति की जा सकती है। दलहनी फसलें जैसे मूँग, उड़द एवं चना मिट्टी में नाइट्रोजन स्थिरीकरण कर उर्वरता बढ़ाती हैं। इसके अलावा प्याज एवं लहसुन जैसी सब्जी फसलें भी उपयुक्त हैं, क्योंकि उनकी पोषक तत्वों की आवश्यकता भिन्न होने से प्रतिस्पर्धा कम होती है। फलदार बागानों जैसे आम, चीकू एवं केला में कतारों के बीच हल्दी उगाकर प्रारंभिक वर्षों में खाली भूमि का उपयोग किया जा सकता है। इस प्रकार वैज्ञानिक अंतरवर्ती खेती अपनाकर उत्पादन और लाभ दोनों बढ़ाए जा सकते हैं।

निंदाई-गुड़ाई

फसल की बुवाई के बाद प्रारंभिक अवस्था में खरपतवार (निंदाई) के नियंत्रण पर विशेष ध्यान देना अति आवश्यक होता है, क्योंकि यदि खरपतवार को समय पर नियंत्रित नहीं किया जाए तो इसका प्रतिकूल प्रभाव फसल के उत्पादन एवं गुणवत्ता पर पड़ता है।

खरपतवार नियंत्रण के लिए 2 से 3 बार हाथ से निराई-गुड़ाई करनी चाहिए, जिससे पौधों का विकास सुचारू रूप से हो सके। इसके अतिरिक्त, यदि खेत को मल्च (आवरण) से ढक दिया जाए तो खरपतवार का प्रभावी नियंत्रण किया जा सकता

है, क्योंकि खरपतवार के बीजों को अंकुरण हेतु आवश्यक सूर्यप्रकाश प्राप्त नहीं हो पाता।

कटाई एवं उत्पादन

हल्दी की फसल सामान्यतः 215 से 245 दिनों में तैयार हो जाती है। जब फसल परिपक्व होती है, तब पौधों की पत्तियाँ पीली पड़ने लगती हैं और पौधे झुकने लगते हैं। मई–जून में बोई गई फसल सामान्यतः फरवरी माह में तैयार हो जाती है।

कभी-कभी बाजार में अधिक मूल्य प्राप्त करने के उद्देश्य से फसल की समय से पहले खुदाई कर ली जाती है, किन्तु इससे उत्पादन में कुछ कमी आ सकती है। खुदाई के समय यह विशेष ध्यान रखना चाहिए कि गांठें कटने या क्षतिग्रस्त न हों। खुदाई के बाद गांठों को एकत्र कर धोकर बाजार में हरी हल्दी के रूप में बेचा जाता है।

हरी हल्दी का उत्पादन लगभग 25 से 32 मीट्रिक टन प्रति हेक्टेयर प्राप्त होता है, जबकि हरी हल्दी से सूखी हल्दी का अनुपात लगभग 17 से 20 प्रतिशत तक होता है।

भंडारण

हल्दी के भंडारण के लिए ऊँचे स्थान पर 4.5 मीटर × 3 मीटर × 2 मीटर आकार का गड्ढा खोदा जाता है। गड्ढे की नमी सूख जाने के बाद उसके तल तथा चारों ओर पराली की परत बिछाई जाती है और उस पर खजूर के पत्तों की चटाइयाँ बिछाई जाती हैं। इसके बाद हल्दी से भरी बोरियों (गुणों) को व्यवस्थित रूप से उसमें रखा जाता है। जब गड्ढा पूरी तरह भर जाता है, तब उसके ऊपर घास और पराली बिछाकर चटाइयों से ढक दिया जाता है तथा गड्ढे में हवा प्रवेश न कर सके इसके लिए ऊपर से गोबर और मिट्टी का लेप किया जाता है। इस प्रकार के गड्ढे में लगभग 15 टन हल्दी को 5 से 6 माह तक सुरक्षित रूप से संग्रहित किया जा सकता है।

मूल्य संवर्धन

हरी हल्दी को उचित रूप से सुखाने के पश्चात उसका पाउडर तैयार किया जाता है, जिसका व्यापक उपयोग मसाले के रूप में किया जाता है। इसके अतिरिक्त, हल्दी में उपस्थित कर्क्यूमिन (Curcumin) नामक प्राकृतिक रंगद्रव्य का उपयोग वस्त्र उद्योग में रंगाई हेतु अत्यधिक किया जाता है तथा इसकी बाजार में निरंतर माँग बनी रहती है। यह रंगद्रव्य शुद्ध घी की गुणवत्ता की पहचान करने में भी सहायक होता है।

हल्दी से प्राप्त टर्मेरिल (Turmeril) नामक वाष्पशील तेल का उपयोग कीटनाशक, जीवाणुनाशक एवं फफूँदनाशक औषधियों के निर्माण में किया जाता है, जिससे इसका औद्योगिक महत्व और बढ़ जाता है। इसके अतिरिक्त, हल्दी में पाए जाने वाला जिंजीबेरिन (Zingiberene) तत्व पेपरमिंट तथा विभिन्न पेय पदार्थों को सुगंधित बनाने में उपयोगी होता है। हल्दी से स्टार्च का निर्माण भी किया जाता है, जिसका उपयोग विभिन्न औद्योगिक प्रक्रियाओं में किया जाता है।

निष्कर्ष

हल्दी से निर्मित कुमकुम (कंकू), वैनिशिंग क्रीम, उबटन (पिठी) एवं अन्य सौंदर्य प्रसाधन उत्पाद भी अत्यंत लोकप्रिय हैं और बाजार में इनकी अच्छी माँग रहती है।

हल्दी की खेती एक पारम्परिक लेकिन अत्यंत लाभकारी व्यवसाय बनती जा रही है। हल्दी से विविध प्रकार के मूल्यवर्धित उत्पाद तैयार कर किसान अतिरिक्त आय अर्जित कर सकते हैं। अतः प्राकृतिक खेती के माध्यम से उत्पादित हल्दी में मूल्य संवर्धन अपनाकर अधिक आर्थिक लाभ प्राप्त किया जा सकता है।

❖❖

स्वीट कॉर्न की वैज्ञानिक खेतीः एक विस्तृत मार्गदर्शिका

अचला सुमन[1]*, अविनाश कुमारपटेल[2], प्रमिला[3], शिवम[4] एवं शिव नारायण धाकर[5]

[1,2एवं3]उद्यान विज्ञान विभाग, स्नातकोत्तर कृषि महाविद्यालय, डॉ. राजेंद्र प्रसाद केंद्रीय कृषि विश्वविद्यालय, पूसासमस्तीपुर, बिहार

[4एवं5]सब्जी विज्ञान प्रभाग, भाकृअनुप-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली

पत्राचारकर्ता: bhartisuman010@gmail.com

परिचय

स्वीट कॉर्न, साधारण मक्का की एक विशिष्ट किस्म है। इसका वैज्ञानिक नाम जिया मेज *Zea mays L. saccharata* है तथा यह Poacee Gvamineae पोएसी (ग्रामिनी) कुल से संबंधित है और मूल रूप से मध्य अमेरिका की देन है, हालाँकि आज यह पूरे विश्व में लोकप्रिय हो चुकी है। साधारण मक्का से इसका मुख्य अंतर इसके आनुवंशिक गुणों में है। स्वीट कॉर्न में स्टार्च के बजाय शर्करा के संचयन को बढ़ावा देते हैं, जिसके कारण इसके दाने दूधिया अवस्था में मीठे और कोमल होते हैं। भारतीय उपमहाद्वीप में इसकी खेती पिछले कुछ दशकों में तेजी से बढ़ी है और आज यह किसानों के लिए एक लाभदायक नकदी फसल के रूप में स्थापित हो चुकी है।

भारत में स्वीट कॉर्न उत्पादन का भौगोलिक वितरण

भारत में स्वीट कॉर्न उत्पादन में दक्षिणी राज्य अग्रणी हैं। कर्नाटक, आंध्र प्रदेश और तेलंगाना में उन्नत तकनीकों एवं सिंचाई सुविधाओं के कारण उच्च उत्पादकता दर्ज की जाती है। जहाँ महाराष्ट्र और तमिलनाडु में भी इसकी खेती तेजी से बढ़ रही है। वही उत्तर भारत जैसे बिहार, उत्तर प्रदेश और पंजाब में भी किसान अब इस ओर रुख कर रहे हैं। गंगा के मैदानी क्षेत्रों की उपजाऊ जलोढ़ मिट्टी और अनुकूल जलवायु के कारण यहाँ अच्छी पैदावार मिलती है। पश्चिम बंगाल में भी इसकी खेती लोकप्रिय हो रही है, विशेषकर कोलकाता जैसे महानगरों की माँग को पूरा करने के लिए।

आर्थिक महत्व

भारत में स्वीट कॉर्न का आर्थिक महत्व लगातार बढ़ रहा है। राष्ट्रीय बागवानी बोर्ड के अनुसार, देश में लगभग 1.5 लाख हेक्टेयर क्षेत्र में इसकी खेती की जाती है, जिसका वार्षिक उत्पादन लगभग 20 लाख टन है। प्रमुख उत्पादक राज्यों में कर्नाटक, आंध्र प्रदेश, तेलंगाना, महाराष्ट्र, तमिलनाडु, बिहार और उत्तर प्रदेश शामिल हैं। इसकी बढ़ती माँग के पीछे मुख्य कारण बदलती खान-पान की आदतें, फास्ट फूड संस्कृति का विस्तार और स्वास्थ्य के प्रति बढ़ती जागरूकता है। होटल, रेस्तरां, फास्ट फूड चेन, सब्जी मंडियों के अलावा प्रसंस्करण उद्योगों में भी इसकी भारी माँग है। फ्रोजन और कैन्ड स्वीट कॉर्न का निर्यात भी संभावनाओं के नए द्वार खोल रहा है।

जलवायु आवश्यकताये एवं तापीय इकाइयाँ

स्वीट कॉर्न सी-4 प्रकाश संश्लेषण श्रेणी की फसल है, जो उच्च तीव्रता वाले प्रकाश में दक्षतापूर्वक वृद्धि करती है। इसकी सफल खेती के लिए इष्टतम तापमान 20°C से 32°C के बीच होना चाहिए। अंकुरण के लिए न्यूनतम तापमान 10°C आवश्यक है, जबकि परागण एवं दाना भराव के समय 25-28°C तापमान सर्वोत्तम रहता है। फसल को परिपक्वता तक पहुँचने के लिए लगभग 1,500-1,800 संचयी तापीय इकाइयों

की आवश्यकता होती है। पर्याप्त धूप एवं हल्की नमी वाले क्षेत्र इस फसल के लिए सबसे उपयुक्त होते हैं।

स्वीट कॉर्न हेतु उपयुक्त भूमि का वैज्ञानिक चयन

मृदा के चयन की बात करें तो गहरी, भुरभुरी एवं उत्तम जल निकास वाली दोमट या बलुई दोमट मिट्टी सर्वोत्तम होती है। मृदा का पीएच मान 5.8 से 7.2 के बीच होना चाहिए। मृदा में कार्बनिक कार्बन की मात्रा कम से कम 0.5% एवं उपलब्ध नाइट्रोजन 250-300 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर होनी चाहिए। जलभराव वाली मृदा में जड़ सड़न की समस्या हो सकती है, इसलिए जल निकास की उचित व्यवस्था आवश्यक है। लवणीय या क्षारीय मृदा में फसल की वृद्धि प्रभावित होती है।

भूमि तैयारी एवं यांत्रिक प्रक्रियाएँ

खेत की तैयारी में प्रथम जुताई मिट्टी पलटने वाले हल से 25-30 सेमी गहराई पर करनी चाहिए, उसके बाद द्वितीय जुताई कल्टीवेटर से 15-20 सेमी गहराई पर और तृतीय जुताई रोटावेटर से करके मिट्टी को भुरभुरा बनाना चाहिए। अंतिम जुताई के समय 20-25 टन प्रति हेक्टेयर सड़ी हुई गोबर की खाद या कम्पोस्ट मिलानी चाहिए। खेत को लेजर लैंड लेवलर से समतल करना अत्यंत आवश्यक है, जिससे सिंचाई जल का समान वितरण संभव हो सके। मेड़ एवं क्यारी विधि अपनाने से जल निकासी सुगम होती है।

उन्नत किस्में एवं आनुवंशिक विशेषताये

स्वीट कॉर्न की उन्नत किस्मों में संकर किस्में प्रमुख हैं। उदाहरण के लिए, शुगर 75 लगभग 75 दिनों में परिपक्व होती है और इसके दानों में 18–20 प्रतिशत शर्करा पाई जाती है, जिससे यह मीठा और स्वादिष्ट होता है। वहीं, शुगर 90 लगभग 90 दिनों में तैयार होती है, 12–14 टन प्रति हेक्टेयर उपज देती है और इसके दानों में 16–18 प्रतिशत शर्करा पाई जाती है। मधुर, जो भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली द्वारा विकसित रोग प्रतिरोधी किस्म है, गोल्डन स्वीट जिसके चमकीले पीले दाने उच्च बाजार माँग रखते हैं, और सुपर स्वीट, जिसमें शर्करा की मात्रा 25-30 प्रतिशत तक होती है, प्रमुख हैं। खुली परागित किस्मों में एशियाई स्वीट कॉर्न और प्रियंका शामिल हैं। संकर किस्मों के लिए बीज दर 8-10 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर एवं खुली परागित किस्मों के लिए 12-15 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर रखनी चाहिए। बीजोपचार हेतु थायरम 2 ग्राम + कार्बेन्डाजिम 1 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज की दर से उपचारित करना आवश्यक है।

बुवाई प्रबंधन एवं अंतराल निर्धारण

बुवाई का समय क्षेत्रीय जलवायु पर निर्भर करता है। खरीफ (वर्षा ऋतु) में जून-जुलाई, रबी (शीत ऋतु) में अक्टूबर-नवम्बर और ग्रीष्मकालीन फसल के लिए जनवरी-फरवरी में बुवाई करनी चाहिए। बुवाई हेतु अनुशंसित अंतराल में पंक्ति से पंक्ति की दूरी 60-75 सेमी, पौधे से पौधे की दूरी 20-25 सेमी, बीज की गहराई 3-4 सेमी और पौध घनत्व 65,000-70,000 पौधे प्रति हेक्टेयर रखना चाहिए। बीज को हाथ से या सीड ड्रिल मशीन से बोया जा सकता है। बुवाई के पश्चात हल्की सिंचाई करना आवश्यक है।

पोषक तत्व एवं उर्वरक प्रबंधन योजना

पोषक तत्व प्रबंधन के लिए मृदा परीक्षण के आधार पर उर्वरकों की मात्रा निर्धारित करना सर्वोत्तम है। जैविक उर्वरक के रूप में गोबर की सड़ी खाद 15-20 टन प्रति हेक्टेयर और नीम खली 250 किग्रा प्रति हेक्टेयर (नेमाटोड नियंत्रण हेतु) देनी चाहिए। रासायनिक उर्वरक के रूप में नाइट्रोजन 120-150 किग्रा, फॉस्फोरस 60-80 किग्रा, पोटाश 40-60 किग्रा और जिंक सल्फेट 25 किग्रा प्रति हेक्टेयर (जहाँ कमी हो) देना चाहिए। फॉस्फोरस एवं पोटाश की पूरी मात्रा तथा नाइट्रोजन की आधी मात्रा अंतिम जुताई के समय देनी चाहिए। शेष नाइट्रोजन दो बराबर भागों में 30-35 दिन (सिंचाई के समय) एवं 50-55 दिन (फूल आने के पूर्व) देना चाहिए।

सिंचाई प्रबंधन एवं जल आवश्यकता

स्वीट कॉर्न की कुल जल आवश्यकता लगभग 500-600 मिमी होती है, जो मौसम एवं मृदा के प्रकार पर निर्भर करती है। ग्रीष्मकाल में 5-7 दिन, शीतकाल में 10-12 दिन और वर्षा ऋतु में आवश्यकतानुसार सिंचाई करनी चाहिए। महत्वपूर्ण सिंचाई चरणों में अंकुरण अवस्था (बुवाई के तुरंत बाद), पाँच पत्ती अवस्था (20-25 दिन), फूल आने की अवस्था (50-55 दिन) और दाना भराव अवस्था (65-75 दिन) शामिल हैं। फव्वारा सिंचाई या ड्रिप सिंचाई अपनाने से जल दक्षता में 30-40% की वृद्धि होती है।

एकीकृत खरपतवार प्रबंधन

खरपतवार फसल उपज में 40-50 प्रतिशत तक की कमी ला सकते हैं, इसलिए प्रभावी नियंत्रण हेतु एकीकृत दृष्टिकोण अपनाना चाहिए। सांस्कृतिक विधियों में स्वस्थ एवं प्रमाणित बीज का उपयोग, उचित अंतराल पर बुवाई और फसल चक्र अपनाना शामिल है। यांत्रिक विधियों में बुवाई के 20-25 दिनों

बाद प्रथम निराई-गुड़ाई और 40-45 दिनों बाद द्वितीय निराई-गुड़ाई करनी चाहिए। रासायनिक विधियों में पूर्व-उद्भव के लिए एट्राजीन 1.0-1.5 किग्रा सक्रिय तत्व प्रति हेक्टेयर (बुवाई के 2-3 दिनों भीतर) और पश्चात-उद्भव के लिए 2, 4-डी सोडियम साल्ट 0.5-0.75 किग्रा प्रति हेक्टेयर (25-30 दिन बाद) का प्रयोग करना चाहिए। मल्चिंग (काली प्लास्टिक या पुआल) खरपतवार नियंत्रण में अत्यधिक प्रभावी है।

प्रमुख कीट एवं उनका वैज्ञानिक नियंत्रण

प्रमुख कीटों में तना छेदक के लक्षण तने में छेद, सूखा हुआ मध्य भाग और मृत हृदय होते हैं। इसके नियंत्रण के लिए ट्राइकोग्रामा कार्ड का प्रयोग (50,000 परजीवी प्रति हेक्टेयर प्रति सप्ताह) और रासायनिक रूप से कार्बोफ्यूरान 3जी 8-10 किग्रा प्रति हेक्टेयर या क्लोरेंट्रानिलिप्रोल 0.4 मिली प्रति लीटर का छिड़काव करना चाहिए। फॉल आर्मीवॉर्म के लक्षण पत्तियों पर छेद, मल त्याग और पौधे की वृद्धि रोकना है। इसके नियंत्रण के लिए फेरोमोन ट्रैप (12-15 ट्रैप प्रति हेक्टेयर), नीम तेल 2 प्रतिशत छिड़काव और रासायनिक रूप से स्पाइनेटोरम 0.3 मिली प्रति लीटर या एमामेक्टिन बेंजोएट 0.4 ग्राम प्रति लीटर का प्रयोग करना चाहिए। एफिड के नियंत्रण के लिए थायोमेथोक्साम 0.25 ग्राम प्रति लीटर या इमिडाक्लोप्रिड 0.5 मिली प्रति लीटर का छिड़काव करना चाहिए।

एकीकृत रोग प्रबंधन

प्रमुख रोगों में तना सड़न के नियंत्रण के लिए जल निकास का उचित प्रबंधन और संतुलित नाइट्रोजन प्रयोग करना चाहिए। पत्ती धब्बा के नियंत्रण के लिए मैंकोजेब 2 ग्राम प्रति लीटर या प्रोपिकोनाजोल 1 मिली प्रति लीटर का छिड़काव करना चाहिए। डाउनी मिल्ड्यू के नियंत्रण के लिए बीजोपचार मेटालैक्सिल 4 ग्राम प्रति किग्रा से करना चाहिए और प्रभावित पौधों को हटा देना चाहिए। रस्ट के नियंत्रण के लिए जिंक मैंगनीज युक्त फफूँदनाशक का छिड़काव करना चाहिए।

फसल कटाई एवं उपज प्रबंधन

कटाई का सही समय निर्धारण अत्यंत महत्वपूर्ण है। पकाव अवधि बुवाई से 70-90 दिन (किस्म एवं मौसमानुसार) होती है। पकाव की पहचान भुट्टे के ऊपरी रेशे का भूरा होना, दानों को दबाने पर दूधिया तरल निकलना और भुट्टे का हरा रंग हल्का पड़ना है। कटाई हाथ से या मशीन द्वारा सुबह या शाम के समय करनी चाहिए। भुट्टों को सीधे धूप में न रखें और कटाई के बाद शीघ्र ही छाया में रखें। उपज क्षमता सामान्यतः 10-12 टन प्रति हेक्टेयर और उन्नत तकनीकों से 15 टन प्रति हेक्टेयर तक हो सकती है।

कटाई-उपरांत प्रबंधन एवं मूल्य संवर्धनः स्वीट कॉर्न के भंडारण एवं प्रसंस्करण की वैज्ञानिक विधियाँ

कटाई-उपरांत प्रबंधन के लिए शीतलन हाइड्रो-कूलिंग या फोर्स्ड एयर कूलिंग द्वारा तापमान 4° सेल्सियस तक लाना चाहिए। भंडारण के लिए तापमान 0-2° सेल्सियस, सापेक्ष आर्द्रता 95% और भंडारण अवधि 5-7 दिन (सामान्य) या 15-20 दिन (नियंत्रित वातावरण में) होनी चाहिए। मूल्य संवर्धन के अवसरों में फ्रोजन स्वीट कॉर्न (ब्लांचिंग के बाद -18ष्टसेल्सियस पर भंडारण), कैन्ड स्वीट कॉर्न (नमकीन पानी में) और भुट्टा (रोस्टेड कॉर्न) के रूप में प्रसंस्करण शामिल हैं।

फसल चक्र एवं सतत उत्पादनः स्वीट कॉर्न के लिए अनुशंसित फसल चक्र मॉडल

सतत उत्पादन के लिए फसल चक्र अपनाना आवश्यक है। अनुशंसित फसल चक्रों में स्वीट कॉर्न - मूँग - गोभी वर्गीय सब्जियाँ, स्वीट कॉर्न - उड़द - आलू और स्वीट कॉर्न - राजमा - गेहूँ शामिल हैं। दलहनी फसलों को शामिल करने से मृदा में नाइट्रोजन की पूर्ति होती है एवं कीट-रोग चक्र टूटता है।

निष्कर्ष

वैज्ञानिक विधि से की गई स्वीट कॉर्न की खेती किसानों के लिए अत्यधिक लाभदायक सिद्ध हो सकती है। उन्नत किस्मों के चयन से उपज एवं गुणवत्ता में वृद्धि, संतुलित पोषण प्रबंधन से फसल उत्पादकता में सुधार, एकीकृत कीट-रोग प्रबंधन से नुकसान में कमी, कटाई-उपरांत प्रबंधन से गुणवत्ता संरक्षण एवं बाजार मूल्य में वृद्धि और मूल्य संवर्धन से अतिरिक्त आय के साधन प्राप्त किए जा सकते हैं। स्वीट कॉर्न न केवल किसानों की आय में वृद्धि करेगा, बल्कि पोषण सुरक्षा में भी महत्वपूर्ण योगदान देगा। सरकारी योजनाओं का लाभ उठाकर एवं वैज्ञानिक सलाह के अनुसार खेती करके किसान इस फसल से अधिकतम लाभ प्राप्त कर सकते हैं। कम अवधि में तैयार होने वाली यह फसल किसानों को त्वरित नकदी प्रदान करती है और बाजार में इसकी स्थिर मांग के कारण यह एक भरोसेमंद आय स्रोत बन सकती है।

❖❖

ISSN No. 2583-3316

कृषि में कीटों का जैविक नियंत्रणः सतत् कृषि एवं पर्यावरण संरक्षण की दिशा में एक प्रभावी रणनीति

धनीराम मौर्य* एवं विवेक विश्वकर्मा

पादप रोगविज्ञान विभाग, लिंगों मुदियाल कृषि महाविद्यालय एवं अनुसंधान केंद्र नरायणपुर, छत्तीसगढ़

पत्राचारकर्ता: dhanirammourya786@gmail.com

परिचय

कृषि उत्पादन में कीटों द्वारा होने वाली क्षति विश्व स्तर पर खाद्य सुरक्षा के लिए एक गंभीर चुनौती है। परंपरागत रूप से कीट नियंत्रण के लिए रासायनिक कीटनाशकों का व्यापक उपयोग किया जाता रहा है, किंतु इनके अत्यधिक प्रयोग से पर्यावरण प्रदूषण, जैव विविधता में कमी, मानव स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव तथा कीटों में कीटनाशक प्रतिरोध जैसी समस्यायें उत्पन्न हुई हैं। इन परिस्थितियों में जैविक नियंत्रण (Biological Control) एक सुरक्षित, पर्यावरण-अनुकूल तथा दीर्घकालिक कीट प्रबंधन तकनीक के रूप में उभरा है। जैविक नियंत्रण में प्राकृतिक शत्रुओं जैसे परभक्षी, परजीवाभक्षी तथा रोगजनक सूक्ष्मजीवों का उपयोग करके कीट जनसंख्या को आर्थिक क्षति स्तर से नीचे बनाये रखा जाता है। यह लेख कृषि में जैविक नियंत्रण की अवधारणा, प्रकार, प्रमुख एजेंटों, लाभ, सीमाओं तथा एकीकृत कीट प्रबंधन में इसकी भूमिका का विस्तृत विवेचन प्रस्तुत करता है।

मुख्य शब्दः जैविक नियंत्रण, प्राकृतिक शत्रु, परभक्षी, परजीवाभक्षी, जैविक कीटनाशक, एकीकृत कीट प्रबंधन।

कृषि विश्व की बढ़ती जनसंख्या के लिए खाद्य, पोषण एवं आर्थिक सुरक्षा का प्रमुख आधार है। किंतु विभिन्न कीट, रोग तथा खरपतवार प्रतिवर्ष फसल उत्पादन में महत्वपूर्ण हानि पहुँचाते हैं। अनुमानतः वैश्विक स्तर पर कुल कृषि उत्पादन का 20–40 प्रतिशत भाग कीटों एवं रोगों के कारण नष्ट हो जाता है। रासायनिक कीटनाशकों ने प्रारंभिक स्तर पर प्रभावी नियंत्रण प्रदान किया, किंतु इनके निरंतर एवं अनियंत्रित उपयोग ने अनेक पर्यावरणीय और स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं को भी जन्म दिया है।

इन समस्याओं के समाधान हेतु वैज्ञानिकों ने प्रकृति आधारित कीट प्रबंधन तकनीकों पर बल दिया है। जैविक नियंत्रण ऐसी ही एक तकनीक है, जो प्राकृतिक शत्रुओं की सहायता से कीट आबादी को नियंत्रित कर कृषि पारिस्थितिकी तंत्र में संतुलन बनाये रखती है।

जैविक नियंत्रण की अवधारणा

जैविक नियंत्रण वह प्रक्रिया है, जिसमें किसी कीट की जनसंख्या को नियंत्रित करने के लिए उसके प्राकृतिक शत्रुओं का उपयोग किया जाता है। प्राकृतिक शत्रुओं में परभक्षी (Predators), परजीवाभक्षी (Parasitoids), रोगजनक सूक्ष्मजीव (Pathogens) तथा प्रतिस्पर्धी जीव सम्मिलित होते हैं।

जैविक नियंत्रण का उद्देश्य कीटों का पूर्ण उन्मूलन नहीं, बल्कि उनकी संख्या को आर्थिक क्षति स्तर (Economic Threshold Level) से नीचे बनाये रखना है, जिससे फसल उत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव न्यूनतम हो।

जैविक नियंत्रण मुख्य रूप से तीन प्रकार की होती है, जो निम्नलिखित है।

3.1 शास्त्रीय जैविक नियंत्रण (Classical Biological Control)

इस विधि में किसी विदेशी अथवा आक्रामक कीट के प्राकृतिक शत्रुओं को उसके मूल क्षेत्र से लाकर प्रभावित क्षेत्र में स्थापित किया जाता है। एक बार स्थापित होने के बाद ये प्राकृतिक शत्रु दीर्घकाल तक कीट नियंत्रण में योगदान देते हैं।

संवर्धनात्मक जैविक नियंत्रण (Augmentative Biological Control)

इसमें प्राकृतिक शत्रुओं का प्रयोगशाला अथवा जैव नियंत्रण उत्पादन इकाइयों में बड़े पैमाने पर उत्पादन कर खेतों में छोड़ा जाता है।

इनोकुलेटिव विमोचनः कम संख्या में प्राकृतिक शत्रुओं का छोड़ना।

इनन्डेटिव विमोचनः त्वरित नियंत्रण हेतु बड़ी संख्या में प्राकृतिक शत्रुओं का छोड़ना।

3.3 संरक्षणात्मक जैविक नियंत्रण (Conservation Biological Control)

इस पद्धति में प्राकृतिक शत्रुओं के संरक्षण एवं संवर्धन हेतु कृषि पारिस्थितिकी तंत्र का प्रबंधन किया जाता है। इसमें रासायनिक कीटनाशकों का विवेकपूर्ण उपयोग, पुष्पीय पौधों का रोपण तथा जैव विविधता का संरक्षण शामिल है।

संरक्षण जैविक नियंत्रण, जैविक नियंत्रण की 3 मुख्य रणनीतियों में से सबसे बुनियादी और सस्ती रणनीति है। इसके अंतर्गत हम खेत में पहले से मौजूद प्राकृतिक शत्रुओं को नष्ट होने से बचाते हैं और उनकी संख्या बढ़ने के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ बनाते हैं।

मुख्य सिद्धांत

संरक्षण जैविक नियंत्रण 3 बातों पर टिका है:

क) पहचानो: पहले ये जानो कि आपके खेत में कौन-कौन से लाभकारी कीट हैं। जैसे लेडीबर्ड, लैसविंग, मकड़ी, परजीवी ततैया। इन्हें मारना नहीं है।

ख) बचाओ: कीटनाशकों के गलत इस्तेमाल से, बार-बार जुताई से, और खेत की पूरी सफाई से ये कीट मर जाते हैं। इन्हें बचाना ही संरक्षण है।

ग) बढ़ाओ: इन्हें भोजन, पानी और छुपने की जगह देकर इनकी संख्या बढ़ाओ। फूल वाले पौधे इनके लिए रेस्तरां का काम करते है।

जैविक नियंत्रण एजेंट

4.1 परभक्षी (Predators)

परभक्षी अपने जीवनकाल में अनेक कीटों का भक्षण करते हैं। वे स्वतंत्र रूप से रहने वाले लाभकारी कीड़े होते हैं, जो अपने भोजन के लिए अन्य कीड़ों (शिकार) का शिकार करके उन्हें खा जाते हैं। कृषि और पारिस्थितिकी तंत्र में, ये कीट प्राकृतिक नियंत्रकों के रूप में कार्य करते हैं और फसलों को नुकसान पहुँचाने वाले हानिकारक कीड़ों की आबादी को नष्ट करते हैं।

उदाहरण लेडी बर्ड बीटल, ग्रीन लेसविंग, मकड़ियाँ और ड्रैगनफ्लाई

4.2 परजीवाभक्षी (Parasitoids)

ये कीट अपने अंडे मेजबान कीट के शरीर अथवा अंडों पर देते हैं। विकसित होने वाली संतति मेजबान को नष्ट कर देती है। ऐसे कीट होते हैं, जो अपने विकास के शुरुआती चरणों (लार्वा अवस्था) में किसी दूसरे जीव (मेज़बान/होस्ट) के शरीर के अंदर या बाहर पलते हैं। ये धीरे-धीरे मेज़बान के अंगों और तरल पदार्थों को खाकर बड़े होते हैं और अंततः मेज़बान कीट की मृत्यु का कारण बनते हैं।

उदाहरण

Trichogramma chilonis, Bracon hebetor Campoleti schlorideae

4.3 रोग जनक सूक्ष्मजीव (Microbial Control Agents)

(क) जीवाणु (Bacteria)

Bacillus thuringiensis (Bt)

(ख) कवक (Fungi)

Beauveria bassiana

Metarhizium anisopliae

(ग) विषाणु (Viruses)

Nuclear Polyhedrosis Virus (NPV)

Granulosis Virus (GV)

(घ) सूत्रकृमि (Entomopathogenic Nematodes)

Steinernema spp.

Heterorhabditis spp.

कृषि में जैविक नियंत्रण के निम्नलिखित महत्व इस प्रकार है

पर्यावरण सुरक्षा

रासायनिक कीटनाशक मिट्टी, पानी और हवा को प्रदूषित करते हैं। जैविक नियंत्रण में लेडीबर्ड, मकड़ी, परजीवी ततैया जैसे कीट काम करते हैं। इनसे पर्यावरण का संतुलन बना रहता है। मधुमक्खी और केंचुए भी सुरक्षित रहते हैं।

लागत में कमी

कीटनाशक हर साल खरीदने पड़ते हैं और महँगे होते हैं। जैविक नियंत्रण में एक बार प्राकृतिक शत्रु खेत में बस जाये तो वो खुद बढ़ते रहते हैं। किसान का खर्च 50-70% तक कम हो जाता है।

कीटों में प्रतिरोधक क्षमता का न पनपना

कीटनाशक बार-बार छिड़कने से कीट 'दवा-प्रतिरोधी' हो जाते हैं। फिर वही दवा काम नहीं करती। लेकिन परभक्षी और परजीवी के साथ कीट प्रतिरोध नहीं बना पाते क्योंकि ये प्राकृतिक प्रक्रिया है।

फसल और मिट्टी की गुणवत्ता मे बढ़ोतरी

कीटनाशक के अवशेष फसल में रह जाते हैं, जो खाने वाले इंसान के लिए हानिकारक हैं। जैविक नियंत्रण से उगी फसल 'कीटनाशक मुक्त' होती है। विदेशों में ऐसी फसल के दाम भी ज्यादा मिलते हैं। मिट्टी में केंचुए और लाभकारी जीवाणु भी बच जाते हैं।

प्राकृतिक संतुलन बना रहता है

खेत एक छोटा इकोसिस्टम है। कीटनाशक से 'अच्छे कीट-बुरे कीट' सब मर जाते हैं। जैविक नियंत्रण से सिर्फ हानिकारक कीट कम होते हैं और लाभकारी कीट बढ़ते हैं। प्रकृति का चक्र चलता रहता है।

मानव स्वास्थ्य के लिए सुरक्षित

किसान जो, दवा छिड़कता है, वो उसके फेफड़े, त्वचा और खून में जाती है। इससे कैंसर, एलर्जी, सांस की बीमारी का खतरा रहता है। जैविक नियंत्रण में जहर नहीं है, तो किसान और खेत में काम करने वाले मजदूर दोनों सुरक्षित हैं।

दीर्घ कालिक और स्थायी खेती

कीटनाशक वाला मॉडल 1-2 साल चलता है, फिर कीट वापस आ जाते हैं। जैविक नियंत्रण 'स्थायी समाधान' है। एक बार खेत का पारिस्थितिकी तंत्र ठीक हो जाए तो हर साल कीट का प्रकोप अपने आप कम रहता है।

एकीकृत कीट प्रबंधन (IPM) में जैविक नियंत्रण की भूमिका

एकीकृत कीट प्रबंधन (Integrated Pest Management) आधुनिक कृषि में कीट नियंत्रण की सबसे प्रभावी रणनीतियों में से एक है। IPM में सांस्कृतिक, यांत्रिक, जैविक एवं रासायनिक विधियों का समन्वित उपयोग किया जाता है। जैविक नियंत्रण IPM का केंद्रीय घटक है क्योंकि यह रासायनिक कीटनाशकों की आवश्यकता को कम करते हुए सतत कृषि विकास को प्रोत्साहित करता है।

भारत में धान, कपास, गन्ना, दलहनी एवं तिलहनी फसलों में Trichogramma प्रजातियों, Chrysoperla carnea तथा NPV आधारित जैविक नियंत्रण तकनीकों का सफलतापूर्वक उपयोग किया जा रहा है।

चुनौतियाँ एवं भविष्य की संभावनाये

यद्यपि जैविक नियंत्रण अत्यंत उपयोगी है, फिर भी इसके व्यापक प्रसार में कुछ चुनौतियाँ हैं:

- किसानों में जागरूकता की कमी।
- गुणवत्तापूर्ण जैव नियंत्रण एजेंटों की सीमित उपलब्धता।
- पर्यावरणीय परिस्थितियों पर निर्भरता।
- त्वरित परिणामों की अपेक्षा।

भविष्य में जैव प्रौद्योगिकी, आणविक जीवविज्ञान तथा कृत्रिम बुद्धिमत्ता आधारित निगरानी प्रणालियों के माध्यम से जैविक नियंत्रण की प्रभावशीलता को और बढ़ाया जा सकता है।

निष्कर्ष

जैविक नियंत्रण कृषि में कीट प्रबंधन का एक वैज्ञानिक, पर्यावरण-अनुकूल एवं टिकाऊ विकल्प है। यह न केवल रासायनिक कीटनाशकों पर निर्भरता को कम करता है, बल्कि पारिस्थितिक संतुलन, जैव विविधता संरक्षण तथा सुरक्षित खाद्य उत्पादन को भी बढ़ावा देता है। वर्तमान समय में सतत् कृषि विकास के लिए जैविक नियंत्रण आधारित रणनीतियों को अपनाना अत्यंत आवश्यक है। किसानों, वैज्ञानिकों एवं नीति-निर्माताओं के समन्वित प्रयासों से जैविक नियंत्रण कृषि की दीर्घकालिक उत्पादकता एवं पर्यावरणीय स्थिरता सुनिश्चित कर सकता है।

संदर्भ

DeBach, P., & Rosen, D. (1991). Biological Control by Natural Enemies. Cambridge University Press, Cambridge.

Dent, D. (2000). Insect Pest Management. 2nd Edition. CABI Publishing, Wallingford, UK.

Pedigo, L.P., & Rice, M.E. (2014). Entomology and Pest Management. 6th Edition. Waveland Press, Illinois, USA.

Van Driesche, R., Hoddle, M., & Center, T. (2008). Control of Pests and Weeds by Natural Enemies: An Introduction to Biological Control. Blackwell Publishing.

Dhaliwal, G.S., Jindal, V., & Dhawan, A.K. (2010). Insect pest problems and crop losses: Changing trends. Indian Journal of Ecology, 37(1): 1–7.

Parrella, M.P. (2008). Biological Control in Protected Culture. Ball Publishing, USA.

Ignacimuthu, S. (2012). Basic Biotechnology. Narosa Publishing House, New Delhi.

ICAR. (2020). Integrated Pest Management Package and Practices. Indian Council of Agricultural Research, New Delhi.

NISCAIR. (2019). Handbook of Agriculture. Indian Council of Agricultural Research (ICAR), New Delhi.

FAO. (2022). Biological Control and Sustainable Agriculture. Food and Agriculture Organization of the United Nations, Rome.

❖❖

ISSN No. 2583-3316

कृषि में स्टार्टअप्स की भूमिका

अंजना गुप्ता* एवं रश्मि शुक्ल
कृषि विज्ञान केंद्र, जबलपुर, मध्य प्रदेश
पत्राचारकर्ता: blogger.sp2020@gmail.com

परिचय

भारत एक कृषि प्रधान देश है, जहाँ आज भी बड़ी आबादी अपनी आजीविका के लिए खेती पर निर्भर है। लेकिन पारंपरिक खेती के सामने कई चुनौतियाँ हैं, जैसे कम उत्पादकता, जल संकट, बाजार तक सीमित पहुँच और तकनीकी जानकारी की कमी। इन समस्याओं के समाधान के लिए पिछले कुछ वर्षों में कृषि क्षेत्र में स्टार्टअप्स का उदय हुआ है।

कृषि स्टार्टअप्स (Agri & Startups) नई तकनीकों, नवाचार और डिजिटल समाधानों के माध्यम से खेती को अधिक आधुनिक, लाभदायक और टिकाऊ बनाने का प्रयास कर रहे हैं। ये स्टार्टअप्स किसानों और बाजार के बीच की दूरी को कम कर रहे हैं और कृषि क्षेत्र में एक नई क्रांति भी ला रहे हैं।

कृषि स्टार्टअप्स क्या हैं?

कृषि स्टार्टअप्स वे नई कंपनियाँ या उद्यम, हैं जो कृषि से जुड़ी समस्याओं का समाधान करने के लिए तकनीक और नवाचार का उपयोग करती हैं। ये स्टार्टअप्स विभिन्न क्षेत्रों में काम करते हैं, जैसे.

- कृषि की तकनीक (AgriTech)
- सप्लाई चेन मैनेजमेंट
- फसल बीमा और वित्तीय सेवायें
- मार्केट लिंकिंग
- जैविक और प्राकृतिक खेती

भारत में कृषि स्टार्टअप्स का विकास

पिछले दशक में भारत में कृषि स्टार्टअप्स की संख्या तेजी से बढ़ी है। सरकार की विभिन्न योजनाओं और डिजिटल इंडिया जैसे अभियानों ने इस क्षेत्र को प्रोत्साहन दिया है।

आज कई युवा उद्यमी खेती को एक अवसर के रूप में देख रहे हैं और नए-नए स्टार्टअप्स शुरू कर रहे हैं। इससे कृषि क्षेत्र में रोजगार के नए अवसरों को उदगम हो रहा है।

कृषि में स्टार्टअप्स की प्रमुख भूमिकाएँ

कृषि स्टार्टअप्स की मुख्य विशेषता कृषि मूल्य श्रंखला में तकनिकी बदलाव लाना है। इस छेत्र में काम कर रहे है स्टार्टअप्स की प्रमुख विशेषता इस प्रकार है।

क. तकनीकी नवाचार (Technological Innovation)

स्टार्टअप्स खेती में नई तकनीकों को ला रहे हैं जैसे

- आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस (AI)
- इंटरनेट ऑफ थिंग्स (IOT)
- ड्रोन टेक्नोलॉजी
- सैटेलाइट इमेजिंग

इन तकनीकों के माध्यम से किसान अपनी फसल की बेहतर निगरानी कर सकते हैं और सही समय पर निर्णय ले सकते हैं।

ख. स्मार्ट खेती को बढ़ावा

स्आर्टअप्स 'स्मार्ट फार्मिंग' को बढ़ावा दे रहे हैं, जिसमें डेटा और तकनीक का उपयोग करके खेती की जाती है।

- मिट्टी की गुणवत्ता का विश्लेषण
- मौसम आधारित सलाह
- पानी और उर्वरकों का सही उपयोग

इससे उत्पादन बढ़ता है और लागत कम होती है।

ग. बाजार तक सीधी पहुँच (Market Linkage)

किसानों की एक बड़ी समस्या है कि उन्हें अपनी फसल का सही मूल्य नहीं मिल पाता। स्टार्टअप्स इस समस्या का समाधान कर रहे हैं, निम्नलिखित माध्यमों से

- ऑनलाइन प्लेटफॉर्म के माध्यम से बिक्री
- बिचैलियों की भूमिका कम करना
- सीधे ग्राहकों तक पहुँच

इससे किसानों की आय में वृद्धि होती है।

घ. सप्लाई चेन में सुधार

स्टार्टअप्स कृषि सप्लाई चेन को अधिक कुशल बना रहे हैं।

- कोल्ड स्टोरेज सुविधा

- लॉजिस्टिक्स मैनेजमेंट
- फसल की गुणवत्ता बनाए रखना

इससे फसल की बर्बादी कम होती है।

ङ. वित्तीय सेवाएं और बीमा

कई स्टार्टअप्स किसानों को वित्तीय सहायता भी प्रदान कर रहे हैं।

- आसान लोन सुविधा
- फसल बीमा
- डिजिटल भुगतान

इससे किसान आर्थिक रूप से मजबूत बनते हैं।

च. जैविक और टिकाऊ खेती को बढ़ावा

स्आर्टअप्स जैविक खेती और प्राकृतिक खेती को भी प्रोत्साहित कर रहे हैं।

- जैविक उत्पादों की मार्केटिंग
- किसानों को प्रशिक्षण
- पर्यावरण के अनुकूल खेती

छ. प्रशिक्षण और जागरूकता

कई स्टार्टअप्स किसानों को नई तकनीकों और तरीकों के बारे में शिक्षित कर रहे हैं।

- मोबाइल ऐप्स
- वीडियोगाइड
- फील्ड ट्रेनिंग

इससे किसानों का ज्ञान बढ़ता है।

किसानों के लिए लाभ

- **आय में वृद्धिः** स्टार्टअप्स की मदद से किसानों को बेहतर मूल्य मिलता है।
- **लागत में कमीः** सटीक जानकारी और तकनीक से खर्च कम होता है।
- **जोखिम में कमीः** मौसम और बाजार की जानकारी से जोखिम घटता है।
- **बेहतर उत्पादनः** नई तकनीकों से फसल की गुणवत्ता और मात्रा बढ़ती है।

चुनौतियाँ

- **तकनीक की पहुँचः** हर किसान तक तकनीक नहीं पहुँच पाती है।
- **डिजिटल साक्षरता की कमीः** कई किसानों को तकनीक का उपयोग करना नहीं आता।
- **निवेश की कमीः** स्आर्टअप्स को फंडिंग प्राप्त करने में कठिनाई होती है।
- **बुनियादी ढाँचाः** ग्रामीण क्षेत्रों में इंटरनेट और बिजली की समस्या होती है।

समाधान

- **सरकारी सहयोगः** सरकार को स्टार्टअप्स को अधिक समर्थन देना चाहिए।
- **प्रशिक्षण कार्यक्रमः** किसानों को डिजिटल साक्षरता के लिए प्रशिक्षित करना चाहिए।
- **निवेश बढ़ानाः** निवेशकों को कृषि स्टार्टअप्स में निवेश के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए।
- **इंफ्रास्ट्रक्चर सुधारः** ग्रामीण क्षेत्रों में इंटरनेट और बिजली की सुविधा बढ़ानी चाहिए।

भविष्य की संभावनायें

कृषि स्टार्टअप्स का भविष्य बहुत उज्ज्वल है। आने वाले समय मेंः

- AI आधारित खेती और विकसित होगी
- ड्रोन और रोबोटिक्स का उपयोग बढ़ेगा
- स्मार्ट मार्केट प्लेटफॉर्म विकसित होंगे
- ग्लोबल मार्केट तक पहुँच आसान होगी

पर्यावरण पर प्रभाव

स्टार्टअप्स टिकाऊ खेती को बढ़ावा देकर पर्यावरण की रक्षा कर रहे हैंः

- रासायनिक उपयोग में कमी
- जल संरक्षण
- मिट्टी की गुणवत्ता में सुधार

निष्कर्ष

कृषि में स्टार्ट अप्स की भूमिका आज के समय में अत्यंत महत्वपूर्ण है। ये स्टार्टअप्स न केवल किसानों की समस्याओं का समाधान कर रहे हैं बल्कि कृषि क्षेत्र को एक नई दिशा भी दे रहे हैं। तकनीक और नवाचार के माध्यम से ये स्टार्टअप्स खेती को अधिक लाभदायक, टिकाऊ और आधुनिक बना रहे हैं। हालांकि कुछ चुनौतियाँ हैं, लेकिन सही रणनीति और सहयोग से इन्हें दूर किया जा सकता है। यदि सरकार, निजी क्षेत्र और किसान मिलकर काम करें, तो कृषि स्टार्टअप्स भारत की कृषि अर्थव्यवस्था को नई ऊँचाइयों तक ले जा सकते हैं। 'कृषि में स्टार्टअप्स केवल व्यवसाय नहीं, बल्कि बदलाव की एक नई सोच हैं, जो किसानों के जीवन को बेहतर बनाने और देश के भविष्य को मजबूत करने का काम कर रहे हैं।'

संदर्भ

Ministry of Agriculture & Farmers Welfare, Government of India
Agricultural Statistics and Policies Reports
वेबसाइटः https://agricoop.nic.in
NITI Aayog
Agriculture and Allied Sectors Reports
वेबसाइटः https://www.niti.gov.in
Startup India Initiative
Agriculture Startups and Innovation Programs
वेबसाइटः https://www.startupindia.gov.in
Food and Agriculture Organization (FAO)
Digital Agriculture and Innovation Reports
वेबसाइटः https://www.fao.org
World Bank
Agriculture and Rural Development Reports
वेबसाइटःhttps://www.worldbank.org
NABARD (National Bank for Agriculture and Rural Development)
AgriStartups and Rural Innovation Reports
वेबसाइटः https://www.nabard.org
ICAR (Indian Council of Agricultural Research)
Research Papers on Modern Agriculture
वेबसाइटः https://icar.org.in
AgFunder Network Partners
Global AgriFoodTech Investment Reports
वेबसाइटःhttps://agfunder.com
McKinsey & Company
Agriculture and Technology Insights Reports
वेबसाइटः https://www.mckinsey.com

❖❖

ISSN No. 2583-3316

कटहल का *राइजोपस* फल गलन रोगः पहचान एवं एकीकृत निदान

आँचल कुमारी[1] एवं राम प्रवेश प्रसाद[2]*

[1]पौधा रोग एवं सूत्रकृमि विभाग, [2]एडवांस सेंटर ऑफ मशरूम रिसर्च
डॉ. राजेन्द्र प्रसाद केंद्रीय कृषि विश्वविद्यालय पूसा, समस्तीपुर

पत्राचारकर्ता: rpprasad79@gmail.com

परिचय

कटहल उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में उगाई जाने वाली एक महत्वपूर्ण फल फसल है। यह विश्व का सबसे बड़ा पेड़ पर लगने वाला फल माना जाता है। इसका वैज्ञानिक नाम *आर्टोकारपस हेट्रोफिलय* है, जो मोरेसी परिवार का सदस्य है। कटहल का मूलस्थान दक्षिण और दक्षिण-पूर्व एशिया माना जाता है। भारत, बांग्लादेश, श्रीलंका, थाईलैंड और इंडोनेशिया जैसे देशों में इसका व्यापक उत्पादन होता है। कटहल का आर्थिक और पोषणीय महत्व बहुत अधिक है। पोषण का अच्छा स्त्रोत-इसमें कार्बोहाइड्रेड,विटामिन और खनिज प्रचुर मात्रा में पाए जाते है। कटहल के कच्चे फल का उपयोग सब्जी, बीजो को उबाल कर या भून कर तथा पके फल का उपयोग मिठाई या सीधें खाने के रूप में किया जाता है, खाद्य उद्योग में उपयोग-जैम, जेली, चिप्स, आइसक्रीम आदि बनाने में उपयोग माँस, का विकल्प-कच्चे कटहल का उपयोग शाकाहारी माँस विकल्प के रूप से भी किया जाता है। देश के विभिन्न राज्यों जैसे केरल, कर्नाटक, तमिलनाडु, बिहार, असम, पश्चिम बंगाल और ओडिशा में इसका बड़े पैमाने पर उत्पादन किया जाता है।

पोषणीय संरचना (Nutritional Composition) कटहल केवल फल नही, बल्कि पोषक तत्वों का भंडार है। इसकी संरचना नीचे दी गई तालिका में स्पष्ट हैः-

पोषक तत्व	मात्रा (प्रति 100ग्राम)	महत्व
ऊर्जा	95 कि.ग्रा. कैलोरी	तत्काल ऊर्जा का स्त्रोत
कार्बोहाइड्रेड	23.2 ग्रा.	ऊर्जा प्रदाता
फाइबर (रेशा)	1.5 मि.ग्रा.	पाचन स्वास्थ्य के लिए श्रेष्ठ
पोटैशियम	448 मि.ग्रा.	रक्तचाप नियंत्रण
विटामिन सी	13.7 मि.ग्रा.	रोग प्रतिरोधक क्षमता
कैल्शियम	24 मि.ग्रा.	हड्डियों की मजबूती

कटहल के प्रमुख रोग

कटहल के उपज को कई रोग जैसे-*राइजोपस* फल गलन, एन्थ्रेक्नोज फल सड़न, स्टेम रॉट पत्ती धब्बा रोग प्रभावित करते है। इनमें *राइजोपस* फल गलन रोग सबसे महत्वपूर्ण रोगों में से एक है, जो फलों को पूरी तरह से सड़ा देता है, जिससे 30 से 80 प्रतिशत तक फल खराब हो जाते है, जिससे किसान भाईयो का आर्थिक नुकसान उठाना पड़ता है।

कटहल के *राइजोपस* रोग से होने वाली अनुमानित हानि (%)

चरण	हानि (%)	मुख्य कारण
कटाई पूर्व	15%-25%	*राइजोपस* सड़न (Rhizopus Rot) और फलों का समय से पहले गिरना।
कटाई पश्चात	10%-15%	खराब भंडारण (Storage) और परिवहन (Transport)
ब्बहार विशिष्ट	20%-30%	क्षेत्रीय जलवायु और *राइजोपस* का अधिक प्रकोप।

***राइजोपस* फल गलन रोग के लक्षण**

राइजोपस फल गलन रोग के लक्षण

राइजोपस आर्टोकापी एक 'फाइकोमायसेटूस' वर्ग का कवक है। इसे सामान्यतः 'ब्रेडमोल्ड' परिवार का हिस्सा माना जाता है। इस रोग का प्रथम लक्षण छोटे फलों पर सफेद रूई जैसा लक्षण दिखाई देता हैं, जो बाद में काले रंग के बीजाणु बन जाते है। फफूँद के राइजोइडूस फल के ऊतकों के अंदर घुस कर पोषण सोखती है। प्रभावित भाग नरम और पानी जैसा हो जाता है। स्पोरेंजिया (Sporangia) अंडे जैसी संरचनाओं (Sporangiophores) के ऊपर काली गेंद जैसी होती है, जिनमें लाखों बीजाणु भरे होते है। जिससे फल क्राले रंग का हो जाता है। यह कवक पेक्टिनोलिटिक एंजाइम छोड़ता हैं, जो फलों की कोशिका भित्ति को गला देते है, जिससे फल चिपचिपा, काला और अत्यधिक नरम होकर सडकर गिरने लगता है।

रोग के प्रसार का माध्यम एवं अनूकुल अवस्थाये

- **प्राथमिक संक्रमणः** मिट्टी और पुराने गिरे हुए फलों से जीवित बीजाणुओं द्वारा।
- **द्वितीयक प्रसारः** हवा, बारिश की बौछारें और कीड़ों (Insect) द्वारा फैलाव।
- **संक्रमण की विधिः** फलों के घावों या सीधें कोमल ऊतकों के माध्यम से प्रवेश।
- अनुकूल तापमान 25-30 डिग्री सेन्टीग्रेट, उच्च आर्द्रता (80%)
- यह रोग हवा, वर्षा, कीट तथा संक्रमित पौध सामग्री के माध्यम से फैलता है, कवक के बीजाणु हवा द्वारा एक पौधें से दूसरे तक पहुँचते है।

एकीकृत निदान

- पेड़ की घनी टहनियों की कटाई-छटाई करे, जिससे धूप पेड़ के अंदरूनी हिस्सों तक आसानी से पहुँचें। सूर्य की यू. वी. (UV) किरणें *राइजोपस* के कवकतंतुओं कों प्राकृतिक रूप से नष्ट कर देती है।
- छोटे फलों पर बैगिंग करे,ताकि कीड़े घाव न कर सके।
- संक्रमित फल जो जमीन पर गिर जाते है, वे 'प्राइमरीइ नोकुलम' (संक्रमण का मुख्य स्रोत) का काम करते है। इन्हें इकट्ठा करके गड्ढे में दबा देना चाहिए या जला देना चाहिए।
- यदि एक ही गुच्छे में बहुत अधिक फल लगे हो, तो उनकी छटाई (Thinning) करें ताकि वे आपस में रगड़ न खाये, क्योंकि जख्मों के जरिए ही कवक फल में प्रवेश करता है।
- रोग के लक्षण दिखाई देने पर *ट्राईकोडर्मा विरिडी* नामक कवक नाशी का 5-10 ग्राम पाउडर को प्रति लीटर पानी में घोल कर छिड़काव करने पर *राइजोपस* कवक को खाकर खत्म कर देता है।
- जुलाई-सितम्बर मे संतुलित पोषक तत्वों का प्रयोग करें, जिनमें पोटैशियम और कैल्शियम का प्रयोग जरूर करें।
- रोग के अधिक प्रकोप होने पर कवक के रोकथाम हेतू मैकोजेब 2.5 ग्राम/ली. पानी या कॉपर ऑक्सीक्लोराइड 50 प्रतिशत डब्लू. पी. 2.5 ग्राम/ली. पानी या *कर्बिन्डाजिम* 50 प्रतिशत डब्लू. पी. 2.0 ग्राम/ली. पानी में मिलाकर आवश्यकतानुसार फूल आने और फल बनने के समय 2-3 सप्ताह के अंतराल पर छिड़काव करना चाहिए।

निष्कर्ष

राइजोपस फल सड़न कटहल की खेती के लिए एक गंभीर जैविक चुनौती है। विशेष रूप से बिहार जैसे आर्द्र क्षेत्रों में, जहाँ मानसून के दौरान संक्रमण का प्रसार तीव्रगति से होता है, यह रोग न केवल किसानों की आर्थिक स्थिति को प्रभावित करता है, बल्कि खाद्य सुरक्षा के लिए भी संकट पैदा करता है। संतुलित पोषक तत्वों, जैविक फफूँदनाशियों एवं आवश्यकतानुसार रसायनिक कवकनाशियों के एकीकृत प्रयोग ही एक मात्र मार्ग है, जिससे हम पर्यावरण को नुकसान पहुँचाये बिना कटहल के उत्पादन में स्थिरता प्राप्त कर सकते है।

❖❖

ISSN No. 2583-3316

कोकेडामाः पुष्पविज्ञान में सजावटी पौध प्रदर्शन हेतु एक पर्यावरण-अनुकूल नवाचार

मेधा साहा*, अश्विनी कुमार और मेनकरानी

पुष्प कृषि एवं भूदृश्य विभाग, पं. किशोरी लाल शुक्ल उद्यानिकी एवं अनुसंधान महाविद्यालय, राजनांदगाँव, महात्मा गाँधी उद्यानिकी एवं वाणीकी विश्वविद्यालय, दुर्ग, छत्तीसगढ़

पत्राचारकर्ताः medhasahams@gmail.com

परिचय

कोकेडामा जापान की एक पारंपरिक बागवानी कला है, जिसमें पौधों को गमले के बजाय मिट्टी और मॉस (काई) की गेंद में उगाया जाता है। 'कोकेडामा' शब्द दो जापानी शब्दों से मिलकर बना है-*कोके* अर्थात् काई (Moss) और *डामा* अर्थात् गेंद (Ball)। यह कला पौधों को सुंदर, प्राकृतिक और आकर्षक रूप प्रदान करती है।

आज के समय में कोकेडामा पूरी दुनिया में लोकप्रिय हो चुका है क्योंकि यह बागवानी और कला का सुंदर मिश्रण है। इसे घरों, कार्यालयों, बालकनी और इनडोर गार्डेन में सजावट के रूप में उपयोग किया जाता है।

इतिहास और उत्पत्ति

कोकेडामा की उत्पत्ति जापान में हुई। यह जापानी बोनसाई परंपरा से जुड़ी हुई कला है। पहले जापानी माली बोनसाई पौधों को बिना गमले के प्राकृतिक रूप में प्रदर्शित करते थे। उसी विचार से कोकेडामा कला का विकास हुआ।

यह कला जापानी दर्शन वाबी-साबी को दर्शाती है, जिसमें सादगी, प्राकृतिक सुंदरता और अपूर्णता की सुंदरता को महत्व दिया जाता है।

कोकेडामा बनाने के लिए आवश्यक सामग्री

कोकेडामा तैयार करने के लिए निम्नलिखित सामग्री की आवश्यकता होती हैः

- छोटा और स्वस्थ पौधा
- बोनसाई मिट्टी या पीट मिट्टी
- चिकनी मिट्टी
- मॉस (काई)
- सूती धागा या जूट की रस्सी

- पानी से भरा बर्तन
- कैंची

कोकेडामा के लिए उपयुक्त पौधे

- फर्न
- मनी प्लांट
- स्पाइडर प्लांट
- फिलोडेंड्रोन
- बांस
- सक्यूलेंट पौधे

कोकेडामा बनाने की विधि

क. मिट्टी तैयार करना

बोनसाई मिट्टी और चिकनी मिट्टी को पानी के साथ मिलाकर नरम और चिपचिपा मिश्रण तैयार करें।

ख. पौधे को निकालना

पौधे को सावधानीपूर्वक गमले से निकालें और उसकी जड़ों से अतिरिक्त मिट्टी साफ करें।

ग. मिट्टी की गेंद बनाना

पौधे की जड़ों के चारों ओर मिट्टी का मिश्रण लगाकर गोल गेंद का आकार दें।

घ. मॉस से ढकना

मिट्टी की गेंद को मॉस से पूरी तरह ढकें और धागे की सहायता से कसकर बाँध दें।

ङ. पानी देना

तैयार कोकेडामा को कुछ मिनट तक पानी में डुबोकर रखें और अतिरिक्त पानी निकलने दें।

च. सजावट

इसे प्लेट पर रखा जा सकता है या धागे से लटकाकर सजाया जा सकता है।

देखभाल और रखरखाव

पानी देना

जब मॉस सूखा महसूस हो, तब कोकेडामा को 5–10 मिनट तक पानी में भिगोये।

धूप

अधिकांश कोकेडामा पौधों को हल्की और अप्रत्यक्ष धूप की आवश्यकता होती है।

नमी बनाये रखना

मॉस पर समय-समय पर पानी का छिड़काव करें।

खाद

महीने में एक बार हल्की तरल खाद देने से पौधा स्वस्थ रहता है।

कोकेडामा के लाभ

- घर की सुंदरता बढ़ाता है
- कम जगह में बागवानी संभव
- पर्यावरण के अनुकूल
- प्लास्टिक गमलों का कम उपयोग
- मानसिक शांति और प्राकृतिक वातावरण प्रदान करता है
- रखरखाव में आसान

आधुनिक सजावट में कोकेडामा का महत्व

आजकल कोकेडामा का उपयोग घरों, कैफे, कार्यालयों और होटलों की सजावट में किया जा रहा है। लटकते हुए कोकेडामा आधुनिक और आकर्षक का केन्द्र बनते देते हैं। इंटीरियर डिज़ाइनर इसे प्राकृतिक और मिनिमल सजावट के लिए पसंद करते हैं।

निष्कर्ष

सजावटी पौधों के प्रदर्शन की एक अभिनव, आकर्षक तथा पर्यावरण-अनुकूल तकनीक है, जो पारंपरिक गमला-आधारित प्रणाली का प्रभावी विकल्प प्रस्तुत करती है। यह विधि न केवल पौधों की सौंदर्यात्मक प्रस्तुति को बढ़ाती है, बल्कि सीमित स्थान में हरित सजावट, इनडोर गार्डेनिंग तथा सतत बागवानी की अवधारणा को भी प्रोत्साहित करती है। कोकेडामा में मिट्टी, काई तथा प्राकृतिक सामग्री का उपयोग होने के कारण यह प्लास्टिक एवं अन्य कृत्रिम संसाधनों पर निर्भरता को कम करता है, जिससे पर्यावरण संरक्षण में भी योग दान मिलता है। पुष्प विज्ञान के क्षेत्र में कोकेडामा का उपयोग घरों, कार्यालयों, प्रदर्शनियों, होटल, शैक्षणिक संस्थानों तथा शहरी उद्यानों में सजावटी पौध प्रदर्शन के लिए अत्यंत उपयोगी सिद्ध हो सकता है। साथ ही, इसकी कम लागत, सरल रख रखाव, कलात्मक स्वरूप तथा नवाचारपूर्ण प्रस्तुति इसे व्यावसायिक दृष्टि से भी महत्वपूर्ण बनाती है। अतः कहा जा सकता है कि कोकेडामा केवल एक सजावटी तकनीक नहीं, बल्कि सतत, सौंदर्य परक एवं पर्यावरण-संवेदन शील पुष्पविज्ञान की दिशा में एक प्रभावशाली कदम है। भविष्य में विभिन्न सजावटी पौध प्रजातियों, माध्यमों तथा प्रबंधन तकनीकों पर और अधिक शोध करके इसे व्यापक स्तर पर अपनाया जा सकता है।

❖❖

ISSN No. 2583-3316

अलौकिक भोजन के रूप में कोलोस्ट्रम

अंकित सिंह[1]*, विकास चन्द्र[2], शिवराज कुमार वर्मा[3] एवं पुष्पराज शिवहरे[4]
[1एवं3]उद्यान विज्ञान विभाग, उदय प्रताप कॉलेज वाराणसी
[2]उद्यान विज्ञान विभाग, बिहार कृषि विश्वविद्यालय, सबौर
[4]पशुपालन और डेयरी विज्ञान विभाग, उदय प्रताप कॉलेज वाराणसी
पत्राचारकर्ता: ankitp13on@gmail.com

परिचय

कोलोस्ट्रम (Colostrum) को प्रकृति का प्रथम एवं सर्वश्रेष्ठ पोषण आहार माना जाता है, इसलिए इसे प्रायः 'अमृत' की संज्ञा दी जाती है। जन्म के तुरंत बाद स्तनधारी मादाओं द्वारा स्रावित यह गाढ़ा पीतवर्णीय दूध नवजात शिशु के शारीरिक, मानसिक एवं प्रतिरक्षात्मक विकास के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण होता है। इसमें उच्च गुणवत्ता वाले प्रोटीन, आवश्यक विटामिन, खनिज, प्रतिरक्षी (एंटीबॉडी), वृद्धि कारक तथा अन्य जैव-सक्रिय तत्व प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं, जो संक्रमणों से सुरक्षा प्रदान करने के साथ-साथ शरीर की वृद्धि एवं विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। यद्यपि पारंपरिक भ्रांतियों एवं सामाजिक मान्यताओं के कारण लंबे समय तक कोलोस्ट्रम की उपेक्षा की जाती रही, परंतु आधुनिक वैज्ञानिक शोधों ने इसके अद्वितीय पोषण एवं औषधीय गुणों को प्रमाणित किया है। आज जिस प्रकार अनेक तथाकथित 'सुपर फूड' बाजार में उपलब्ध हैं, उनकी तुलना में कोलोस्ट्रम कहीं अधिक प्राकृतिक, सुरक्षित एवं बहुगुणकारी पोषण स्रोत है। अतः इसके महत्व के प्रति जन-जागरूकता बढ़ाना समय की महत्वपूर्ण आवश्यकता है।

सदियों से चली आ रही भ्रांति को आज भी देश की बड़ी आबादी अनुकरण कर रही है, परन्तु वैज्ञानिक दृष्टि कोण पुर्त या गलत है, जिसका एक उदाहरण आज भी देखने को मिलता है, लगभग सभी लोग शिशु के जन्म के बाद निकलने वाले प्रथम दूध (कोलोस्ट्रम) को, चाहे वह मनुष्य का हो या जुगाली करने वाले पशुओं (गाय, भैंस, बकरी, भेड़ आदि) का, नहीं पिलाते हैं। वे इस पदार्थ को अपनी सुविधा अनुसार किसी स्थान पर बहा देते हैं, जबकि यह पूरी तरह गलत प्रथा है। मुख्यतः पशुपालकों में एक गलत भ्रांति फैली हुई है कि जब तक गाय, भैंस जेर न डाल दे तब तक बछड़े को खीस नहीं पिलाना चाहिए, यह बिलकुल गलत है। बल्कि जन्म के उपरांत नवजात बछड़े को 1-1.5 घंटे के भीतर खीस पिलाये, जेर के निकलने का इंतज़ार न करें, क्योंकि यदि नवजात बछड़े को खीस पिलाने में अधिक देर हो गयी तब खीस कि प्रतिरोधक छमता में कमी आएगी और बछड़े के जीवित बचने कि संभावना कम हो जाएगी। उसी प्रकार मनुष्य के बच्चो को भी कोलोस्ट्रम का सेवन पैदा होने के बाद तुरंत कराना चाहिए, जिससे उनकी प्रतिरक्षा प्रणाली के विकास में अतुलनीय योगदान करता है। आज की युवा पीढ़ी कोलोस्ट्रम के महत्व को कम समझती है, स्तनधारियो के स्तन से शिशु के पैदा होने के बाद विशेष तरह के तरल का रिसाव ही कोलोस्ट्रम होता है, कोलोस्ट्रम शु रुआती अवस्था में बच्चे की प्रतिरक्षा प्रणाली के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है, यह गर्भावस्था के दौरान शरीर द्वारा बनाया जाने वाला पहला दूध है। यह स्तन ग्रंथियों (स्तनों)

में बनता है, इसमें प्रोटीन, विटामिन, खनिज और इम्युनोग्लोबुलिन (एंटीबॉडी) भरपूर मात्रा में तथा वसा और शर्करा कम मात्रा में होते हैं। इसे अक्सर इसके समृद्ध, सुनहरे रंग और बहुमूल्य लाभों के कारण 'तरल सोना' कहा जाता है। छोटी खुराक में भी पोषक तत्वों से भरपूर होता है, इसलिए बच्चे के पेट को इसके लाभों को प्राप्त करने के लिए बहुत अधिक की आवश्यकता नहीं होती है। कोलोस्ट्रम में मैग्नीशियम भरपूर मात्रा में होता है, जो बच्चे के दिल और हड्डियों को सहारा देता है, और कॉपर और जिंक भी होता है, जो प्रतिरक्षा को भी सहारा देता है। मनुष्य भी समान रूप सेजुगाली करने वाले जानवरो के कोलोस्ट्रम का उपभोग कर सकते है, जो नाना प्रकार के पोषक तत्वों से भरपूर होता है और शारीरिक विकास में महत्वपूर्ण योगदान देता है। कोलोस्ट्रम को देश के भिन्न-भन्न भागो में अन्य नामों जैसे खीस, नवदुग्धखरवस, बोवाइन, पेउस, पयोस, अमृत, सुधा एवं बरी से संबोधित भी किया जाता है। इसके महत्व को बढावा देने एवं जनमानस को जागरूक करने के लिए विश्व स्तनपान सप्ताह के माध्यम से किया जा रहा है। कैसे प्रसव के तुरंत बाद माँ के स्तन से निकलने वाला गाढ़ा पीला दूध शिशु के लिए जीवनभर रोगों से लड़ने के लिए सुरक्षा कवच का काम करती है। कोलोस्ट्रम में मौजूद एंटीबॉडीज़ की ताकत जीवनभर चलती है। जन्म के बाद पिलाया जाने वाला यह दूध अमृत के समान है। इसके पोषक तत्व शिशु के विकास के लिए बेहद महत्वपूर्ण होते हैं, चाहे वो मनुष्य के बच्चे हो या जुगाली करने वाले जानवर के बच्चे या पशुओं से प्राप्त कोलोस्ट्रम का उपयोग मनुष्य के लिए हो।

नवजात बच्चे चाहे मनुष्य के हो या जुगाली करने वाले जानवर के हो उनमें रोग प्रतिरोधक क्षमता बहुत कम होती है क्योंकि वे कुछ एंटीबाडीज़ और एक अपरिपक्व प्रतिरक्षा प्रणाली के साथ पैदा होते हैं, जो कुछ हफ्तों के लिए एंटीबॉडीज़ का उत्पादन करने में सक्षम नहीं होते है। बच्चो को संक्रमण से बचाने और उसकी प्रतिरोधक क्षमता को मजबूत करने के लिए खीस/कोलोस्ट्रम एक अच्छा उपाय होता है। खीस बच्चो को दिया जाने वाला पहला और सबसे आवश्यक अनमोल आहार है, जो बच्चो के लिए बेहद पौष्टिक होता है और इसमें उच्च स्तर के एंटीबॉडीज़ होती हैं,जो बच्चो को अधिकांश जीवों के कारण होने वाली बीमारियों से रोकने के लिए आवश्यक है। खीस उन पोषक तत्वों से भरा होता है, जो बीमारी से लड़ते हैं और विकास को बढ़ावा देते हैं।

जुगाली करने वाले जानवर के कोलोस्ट्रम में सामान्य दूध की तुलना में 4-5 गुना अधिक प्रोटीन और 7-8 गुना अधिक विटामिन-ए पाया जाता है। खीस में खनिज तत्व-कैल्शियम, फॉस्फोरस, मैग्नीशियम, सोडियम, पोटैशियम तथा जिंक पर्याप्त मात्रा में पाए जाते हैं और यह कई प्रतिरक्षी, वृद्धि कारकों और आवश्यक पोषक तत्वों के साथ ट्रिप्सिन जैसे अवरोधक कारक भी रखता है। वही हम अगर मनुष्य के कोलोस्ट्रम की बात करे तो ये भी नवजात बच्चों को मजबूत रोग प्रतिरोधक प्रणाली प्रदान करने के लिये उपयोगी होता है, अपच जैसी समस्या से बचाता है, आंतों की सफाई करने तथा आंतों में मौजूद अच्छे सूक्ष्म जीवाणुओं को बढाने में मदद करता है नवजात शिशु में पीलिया होने की संभावना बनी रहती है परन्तु कोलोस्ट्रम का उपभोग करने से पीलिया का जोखिम कम होता है साथ ही साथ कोलोस्ट्रम दूध रक्त में बिलीरुबिन का निर्माण कम करने में मदद करता है, जिससे पीलिया से भी बचाव करने में उपयोगी होता है। नवजात शिशु के शारीरिक विकास के लिए आवश्यक सभी पोषक तत्वों की मात्रा कोलोस्ट्रम दूध में पाई जाती है, जिससे उसको सुपर फूड की संज्ञा भी दी गयी है। नवजात शिशु में निम्न रक्त शर्करा यानी हाइपोग्लाइसीमिया की समस्या बनी रहती है। कोलोस्ट्रम निम्न रक्त शर्करा से बचाव करने में उपयोगी होते है।

आधुनिक समय के लिए एक प्राचीन भोजन

व्यायाम प्रदर्शन और शरीर संघटन

सैनिकों से लेकर पेशेवर खिलाड़ियों तक, सभी के लिए कोलोस्ट्रम एक महत्वपूर्ण प्राकृतिक पदार्थ माना जाता है, जो उनके शारीरिक प्रदर्शन और रिकवरी में सहायता कर सकता है। विभिन्न अध्ययनों से संकेत मिलता है कि बोवाइन कोलोस्ट्रम (गाय का प्रथम दूध) प्रतिरक्षा तंत्र को मजबूत करने, कठिन व्यायाम के बाद सुधार में सहायता करने, आंतों की सुरक्षा बनाए रखने तथा कुछ परिस्थितियों में सहनशक्ति और प्रदर्शन को बनाए रखने में लाभकारी हो सकता है। हालांकि, दुबली माँसपेशियों के निर्माण और प्रत्यक्ष प्रदर्शन वृद्धि के संबंध में उपलब्ध वैज्ञानिक प्रमाण सीमित और मिश्रित हैं। शिंग एटअल, (2009).

कोलोस्ट्रम में कई जैव सक्रिय तत्व पाए जाते हैं, जैसे इंसुलिन - लाइकग्रोथफैक्टर (IGF-I एवं IGF-II), इम्युनोग्लोबुलिन, लैक्टोफेरिन तथा अन्य वृद्धिकारक, जोऊ तक विकास, प्रतिरक्षा और रिकवरी में भूमिका निभा सकते हैं। बोवाइन कोलोस्ट्रम में IGF जैस ग्रोथफैक्टर पाए जाते हैं, इसलिए यह खेल पोषण में रुचि का विषय रहा है।

कुछ अध्ययनों में यह बताया गया है कि कोलोस्ट्रम प्रोटीन संश्लेषण, प्रतिरक्षा कार्य और व्यायाम के बाद रिकवरी में सहायता कर सकता है, लेकिन आधुनिक समीक्षाओं के अनुसार यह स्पष्ट प्रमाण नहीं है कि बोवाइन कोलोस्ट्रम लेने से रक्त में IGF-I स्तर में लगातार वृद्धि होती है या इससे प्रत्यक्ष रूप से माँसपेशियों का द्रव्यमान बढ़ता है। इसलिए इसके लाभों को सावधानीपूर्वक और वैज्ञानिक साक्ष्यों के आधार पर समझना चाहिए।

कोलोस्ट्रम में ऐसे कई अन्य विकास कारक पाए जाते है, जो चोटों के उपचार में मदद करते हैं, हड्डी एवं टेंडन की मरम्मत में तेजी लाते है।

ऑटोइम्यून रोग/लीकी गट सिंड्रोम

कोलोस्ट्रम में प्रतिरक्षा कारक होते हैं, जो प्रतिरक्षा प्रतिक्रिया को नियंत्रित कर सकते हैं, विकास कारक क्षतिग्रस्त कोशिकाओं की मरम्मत में मदद कर सकते हैं और सूजन को कम करने के लिए सूजनरोधी पदार्थ होते हैं। कोलोस्ट्रम से प्राप्त प्रोलीनरिच प्रोटीन थाइमस ग्रंथि के नियामक पदार्थों के रूप में कार्य करता है। यह एलर्जी ऑटोइम्यून रोगों में सुधार या उन्मूलन करता है। पी.आर.पी. लिम्फोसाइट्स और टी कोशिकाओं के अधिक उत्पादन को रोकता है और दर्द, सूजन और संक्रमण को कम करता है। कोलोस्ट्रम से लैक्टोफेरिन ह्यूमरल प्रतिरक्षा प्रतिक्रिया को बहाल करता है जो, टी कोशिकाओं और बी कोशिकाओं द्वारा मध्यस्थता की जाती है। लैक्टोफेरिन वायरल और बैक्टीरियल संक्रमण को कम करता है और आंत की पारगम्यता और स्थिरता बनाए रखने में फायदेमंद होता है। ई. जी. एफ. त्वचा कोशिकाओं के विनाश को उलटने में मदद करता है, जो ऑटोइम्यून विकार के साथ हो सकता है। टी. एन. एफ. ऊतक की मरम्मत को उत्तेजित करता है।

लैक्टोफेरिन और कोलोस्ट्रम के कैंसर-रोधी प्रभाव

लैक्टोफेरिन कैंसर कोशिकाओं को रोकने में मदद करता है। लैक्टोफेरिन बड़ी आंत, मूत्राशय, जीभ, इसोफैगस, फेफड़ों के कैंसर को रोकता है। यह लैक्टोफेरिन के प्रभाव के कारण होता है क्योंकि यह प्रतिरक्षा को बढ़ाता है। कोलोस्ट्रम में दूध की वसा होती है, जिसमें कैंसर-रोधी गुण होते हैं। कोलोस्ट्रम में कंजुगेटेडलिनो लेनिकएसिड में कैंसर-रोधी गुण होते हैं। कोलोस्ट्रम रोटावायरस और साल्मोनेला टाइफी संक्रमण सुरक्षा के साथ-साथ लैक्टोफेरिन की उति के कारण एंटीबायोटिक से संबंधित दस्तपस्थि में भी भूमिका निभाता है।

शिशुओं में पाचन तंत्र की परिपक्वता

कई शोधकर्ताओं ने दिखाया है कि कोलोस्ट्रम शिशुओं में पाचन तंत्र के विकास और परिपक्वता में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। कोलोस्ट्रम में पोषक तत्व नवजात शिशुओं में गैस्ट्रोइंटेस्टाइनल ट्रैक्ट की परिपक्वता के लिए एक उपयुक्त वातावरण बनाते हैं, अर्थात् जैव रासायनिक, शारीरिक, रूपात्मक, कार्यात्मक, प्रतिरक्षात्मक एवं रोगाणुरोधी।

माइक्रोबियल संक्रमण के कारण होने वाले आंतों के रोगों का इलाज

बोवाइन कोलोस्ट्रम और इसके घटक ग्राम नेगेटिव और ग्राम पॉजिटिव बैक्टीरिया के खिलाफ प्रभावी पाए गए और आंत के संक्रमण और दस्त के इलाज में मदद करते है।

बोवाइन कोलोस्ट्रम न्यूट्रास्युटिकल्स के विकास

बोवाइन कोलोस्ट्रम जैविक रूप से सक्रिय पेप्टाइड्स, एंटीऑक्सीडेंट, एंटी-इंफ्लेमेशन एजेंटों और विकास को बढ़ावा देने वाले कारकों में काफी समृद्ध है, जो बाद के दूध से काफी भिन्न होते हैं। बोवाइन कोलोस्ट्रम के लाभ बच्चों और वयस्कों के स्वास्थ्य और बीमारी में अच्छी तरह से ज्ञात हैं। जैसा कि पहले चर्चा की गई है, बोवाइन कोलोस्ट्रम एक उभरता हुआ न्यूट्रास्युटिकल और अभिनव चिकित्सीय उत्पाद है, जिसे बच्चों के सूत्रों और गैर-संचारी रोगों के उपचार के लिए विकसित किया जा रहा है। उम्मीद है, बोवाइन कोलोस्ट्रम सप्लीमेंट विभिन्न प्रकार के कैंसर, मधुमेह, हृदय रोग, नेक्रोटाइजिंग एंटरोकोलाइटिस, और सूजन आंत्र रोग या क्रोहन रोग, और ऑटोइम्यून विकारों को ठीक करने में बहुत योगदान देंगे। विभिन्न बोवाइन कोलोस्ट्रम अवयवों की जैविक भूमिकाओं को समझना पोषण विशेषज्ञों और आहार विशेषज्ञों, बुनियादी शोधकर्ताओं और चिकित्सकों के लिए एक बड़ी चुनौती है।

तालिका 1: मानव कोलोस्ट्रम और गाय कोलोस्ट्रम की पोषण संरचना

पोषण कारक	मानव कोलोस्ट्रम	गाय कोलोस्ट्रम
ऊर्जा (kcal)	58	130
प्रोटीन (g)	3.7	14.9
लैक्टोज (g)	5.3	2.6
वसा (g)	2.9	6.7

* कोलोस्ट्रम के 100 मि.ली. में

संदर्भः गुथरी (1989) तथा की हो एवं अन्य (2007)

निष्कर्ष

कोलोस्ट्रम की अत्यंत महत्वपूर्ण उपयोगिता होने के बावजूद आज भी कई लोग पारंपरिक भ्रांतियों और गलत धारणाओं के कारण इसका उपयोग करने से बचते हैं। प्रायः देखा जाता है कि जुगाली करने वाले पशुओं (जैसे गाय, भैंस, बकरी, भेड़ आदि) से प्राप्त प्रथम दूध (कोलोस्ट्रम) को लोग किसी साफ स्थान पर बहा देते हैं, जब कि ऐसा करना पूरी तरह गलत है, क्योंकि यह अत्यंत पोषक से भरपूर एवं लाभकारी है। वहीं, यदि मनुष्यों में प्राप्त कोलोस्ट्रम की बात करें, तो विभिन्न जागरूकता अभियानों एवं सरकारी कार्यक्रमों के माध्यम से लोगों को इसके महत्व के बारे में जागरूक किया गया है। इसके परिणामस्वरूप अब अधिकतर लोग नवजात शिशुओं को जन्म के तुरंत बाद कोलोस्ट्रम पिलाने लगे हैं, जिससे शिशु को आवश्यक पोषण और रोग प्रतिरोधक क्षमता प्राप्त होती है। सही मायने में देखा जाये तो पशुओ के लिए भी जागरूकता अभियान की आवश्यकता है क्योंकि कृषि में एवं पशुपालन एक ही सिक्के के दो पहलु है, इसके बिना ग्रामीण अर्थव्यवस्था और मानव जीवन की कल्पना करना भी मुश्किल है।

संदर्भ

गुथरी, ए. एच. (1989). इंट्रोडक्टरीन्यूट्रिशन. सेंटलुइस, मिसौरीः टाइम्समिरर/मोस्बीकॉलेज पब्लिशिंग।

की हो, जयाराव एवं हेनरिक्स (2007), पेनसिल्वेनिया डेयरी फार्मों में बोवाइन कोलोस्ट्रम की संरचना एवं प्रबंधन पद्धतियों का सर्वेक्षण, जर्नल ऑफडेयरीसाइंस, 90(9): 4108–4116.

शिंग, सी.एम., हंटर, डी.सी., एवं स्टीवेन्सन, एल.एम. (2009). बोवाइन कोलोस्ट्रम अनुपूरण एवं व्यायाम प्रदर्शनः संभावित क्रिया विधियाँ, 39(12): 1033–1054.

❖❖

ISSN No. 2583-3316

गृह वाटिकाः स्वास्थ्य और आत्मनिर्भरता का हरा-भरा मार्ग

तरुण प्रधान* एवं विवेक विश्वकर्मा

पादप रोगविज्ञान विभाग, लिंगों मुदियाल कृषि महाविद्यालय एवं अनुसंधान केंद्र नरायणपुर, छत्तीसगढ़

पत्राचारकर्ता: tarunpradhan915@gmail.com

परिचय

आधुनिक समय में शुद्ध और रसायनों से मुक्त भोजन प्राप्त करना एक बड़ी चुनौती बन गया है। ऐसे में 'गृह वाटिका' (किंचन गार्डन) हमारे घरों में स्वास्थ्य और पोषण का एकसशक्त माध्यम बनकर उभरी है।

गृह वाटिका का अर्थ है- अपने घर के आस-पास उपलब्ध खाली भूमि पर अपनी दैनिक आवश्यकताओं के अनुसार फल, सब्जियाँ और औषधीय पौधे उगाना। यह केवल मनोरंजन या शौक नहीं है, बल्कि यह परिवार के स्वास्थ्य को सुरक्षित रखने और घरेलू अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ करने का एक वैज्ञानिक तरीका है।

गृह वाटिका का महत्व

ताजी और पौष्टिक सब्जीः बाजार की दवाइयों और रसायन व्युक्त सब्जी से बचते हैं। घर की जैविक सब्जी ज्यादा स्वादिष्ट और पोषक तत्त्व से भरपूर होता है।

- **पैसे की बचतः** रोज की सब्जी खरीदने का खर्च घटता है। 100-200 रु महीने की सब्जी घर पर ही मिल जाती है।
- **स्वास्थ्य लाभः** बागवानी करने से शारीरिक व्यायाम होता है। तनाव कम होता है। बच्चों में प्रकृति से जुड़ाव बढ़ता है।
- **पर्यावरण संरक्षणः** जैविक कचरा जैसे सब्जी के छिलके से खाद बनती है। प्लास्टिक थैलियों का उपयोग कम होता है। हवा शुद्ध रहती है।
- **जैविक कीट नियंत्रणः** तुलसी, पुदीना, गेंदा लगाने से हानिकारक कीड़े दूर रहते हैं। रासायनिक दवा की जरूरत नहीं पड़ती।

स्थान का चयन और योजना

किचन गार्डन घर के आस-पास उपलब्ध भूमि पर स्थापित किया जाने वाला एक छोटा उद्यान होता है, जिसमें परिवार की दैनिक आवश्यकता के लिए ताज़ी सब्जियाँ, मसाले और कुछ फल उगाए जाते हैं। इसका मुख्य उद्देश्य परिवार को पौष्टिक, ताज़ा तथा रसायन-मुक्त खाद्य पदार्थ उपलब्ध कराना है। एक सफल किचन गार्डन के लिए उचित स्थान का चयन और सुनियोजित योजना बनाना अत्यंत आवश्यक है।

किचन गार्डन के लिए ऐसे स्थान का चयन करना चाहिए, जहाँ पर्याप्त धूप प्राप्त होती हो, क्योंकि अधिकांश सब्जियों की अच्छी वृद्धि के लिए प्रतिदिन कम से कम 6 से 8 घंटे सूर्य का प्रकाश आवश्यक होता है। भूमि उपजाऊ, समतल तथा जल निकास की उचित व्यवस्था वाली होनी चाहिए। साथ ही, स्थान घर के निकट होना चाहिए ताकि सिंचाई, निराई-गुड़ाई तथा अन्य देखभाल के कार्य आसानी से किये जा सकें। पशुओं और अन्य हानियों से सुरक्षा के लिये बाड़बंदी की व्यवस्था भी आवश्यक है।

किचन गार्डन की योजना बनाते समय उपलब्ध भूमि को छोटे-छोटे भागों या क्यारियों में विभाजित किया जाता है। क्यारियों के बीच पर्याप्त रास्ता छोड़ा जाता है, ताकि देखभाल के कार्य सुगमता से किए जा सकें। वर्ष भर सब्जियों की उपलब्धता बनाये रखने के लिये विभिन्न मौसमों की सब्जियों का चयन किया जाना चाहिए। फसल चक्र अपनाने से मिट्टी की उर्वरता बनी रहती है तथा कीट एवं रोगों का प्रकोप कम होता है। बेल वाली सब्जियों को किनारों पर तथा ऊँचे पौधों को ऐसी दिशा में लगाया जाना चाहिए जिससे, वे अन्य पौधों के लिए छाया का कारण न बनें।

जैविक खाद, जैसे गोबर की खाद, कम्पोस्ट और वर्मी कम्पोस्ट का उपयोग किचन गार्डन की उत्पादकता बढ़ाने में सहायक होता है। सिंचाई की उचित व्यवस्था तथा समय-समय पर खरपतवार नियंत्रण भी आवश्यक है। यदि योजना वैज्ञानिक

ढंग से बनाई जाये तो कम स्थान में भी अधिक उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है।

अंततः, किचन गार्डन का सही चयन एवं सुव्यवस्थित योजना न केवल परिवार को ताज़ी और पौष्टिक सब्जियाँ उपलब्ध कराती है, बल्कि पर्यावरण संरक्षण, आर्थिक बचत तथा स्वस्थ जीवनशैली को भी बढ़ावा देती है। इसलिए प्रत्येक परिवार को अपनी उपलब्ध भूमि और संसाधनों के अनुसार किचन गार्डन विकसित करने का प्रयास करना चाहिए।

वाटिका का रेखाचित्र (लेआउट)

भूमि के आकार के अनुसार एक नक्शा तैयार करना चाहिए। बारह मासी पौधे (जैसे नींबू, पपीता) को वाटिका के उत्तर या पश्चिम दिशा में लगाना चाहिए ताकि उनकी छाया छोटे पौधों पर न पड़े। मौसमी सब्जियों के लिए क्यारियाँ पूर्व से पश्चिम की ओर बनानी चाहिए। यदि सही योजना के साथ लेआउट तैयार किया जाए, तो कम जगह में भी साल भर ताजी और जैविक सब्जियां उगाई जा सकती हैं। आइए जानते हैं कि एक आदर्श किचन गार्डन का लेआउट कैसा होना चाहिए।

क. जगह का चयनः लेआउट बनाने से पहले सही जगह चुनना सबसे जरूरी कदम है धूप की उपलब्धता पौधों के अच्छे विकास के लिए रोजाना 5 से 6 घंटे की सीधी धूप मिलना आवश्यक है।पानी का स्रोतसिंचाई में आसानी के लिए पानी की व्यवस्था पास में ही होनी चाहिए। जल निकासीजमीन ऐसी होनी चाहिए जहाँ पानी जमा न हो, अन्यथा पौधों की जड़ें सड़ सकती हैं।

ख. आदर्श आकार और दिशा दिशाः किचन गार्डन का लेआउट हमेशा उत्तर-दक्षिण दिशा में होना चाहिए। इससे सभी पौधों को समान रूप से धूप मिलती है और बड़े पौधों की परछाई छोटे पौधों पर नहीं पड़ती। आकारः एक सामान्य परिवार (4-5 सदस्य) के लिए सब्जियों की क्यारियों का आकार उपलब्ध जगह के अनुसार तय किया जा सकता है।

ग. लेआउट के मुख्य भागः एक व्यवस्थित लेआउट में निम्नलिखित क्षेत्रों का होना जरूरी हैः

पौधों के प्रकार	उपयुक्त स्थान (लेआउट में)	उदाहरण
ऊँचे पौधे	उत्तर या पश्चिम दिशा के किनारे पर	नींबू, पपीता, कढ़ी पत्ता
बेल वाली सब्जियाँ	बाड़ या मचान के पास	लौकी, तोरई, करेला, कद्दू
मध्यम ऊँचाई के पौधे	बीच की क्यारियों में	टमाटर, बैंगन, भिंडी, मिर्च
कम ऊँचाई / कंद वाली फसलें	सामने की छोटी क्यारियों में	गाजर, मूली, प्याज, आलू
पत्तेदार सब्जियाँ	आसानी से पहुँच वाले हिस्सों में	धनिया, पुदीना, पालक, मेथी

क) क्यारियों का वर्गीकरणःस्थायी क्यारियाँः बगीचे के एक कोने या किनारे पर ऐसी फसलें लगायें जो सालों-साल चलती हैं, जैसे- नींबू, पपीता, सहजन या बारहमासी मिर्च। मौसमी क्यारियां बीच के हिस्से में ऐसी क्यारियाँ बनाये जिनमें मौसम के अनुसार (रबी, खरीफ, जायद) सब्जियां बदली जा सकें।

ख) रास्तों का निर्माणः दो क्यारियों के बीच कम से कम 2 से 2.5 फीट चौड़ा रास्ता होना चाहिए। इससे पौधों की निराई-गुड़ाई, कटाई और पानी देते समय पौधों को नुकसान नहीं पहुँचता और काम करने में आसानी होती है।

ग) खाद का गड्ढा (कम्पोस्ट पिट)ः लेआउट के सबसे अंतिम या पीछे के कोने में एक छोटा गड्ढा जरूर रखें। यहाँ रसोईघर का गीला कचरा और बगीचे की सूखी पत्तियाँ डालकर आप घरेलू जैविक खाद तैयार कर सकते हैं।

मृदा प्रबंधन और तैयारी

मिट्टी किसी भी पौधे का आधार होती है। उपजाऊ मिट्टी ही अच्छी फसल की गारंटी है।

- **मिट्टी की जुताईः** सबसे पहले चुनी गई भूमि की अच्छी तरह खुदाई करके पत्थरों, घास-फूस और पुरानी जड़ों को साफ कर लेना चाहिए। मिट्टी को भुरभुरा बनाना आवश्यक है।
- **जैविक खाद का मिश्रणः** मिट्टी की उर्वरा शक्ति बढ़ाने के लिए प्रचुर मात्रा में सड़ी हुई गोबर की खाद, केंचुआ खाद (वर्मीकंपोस्ट) और सूखी पत्तियों का मिश्रण मिलाना चाहिए।
- **मिट्टी का उपचारः** फफूंद या हानिकारक कीटों से बचाव के लिए नीम की खली को मिट्टी में मिलाना एक उत्तम प्राकृतिक उपाय है।

ऋतुओं के अनुसार फसलों का चयन

भारत में ऋतुओं के अनुसार सब्जियों का वर्गीकरण किया जाता है, जिससे वर्ष भर निरंतर उत्पादन प्राप्त किया जा सके,पौधों को हमेशा कतारों में बोना चाहिए ताकि निराई-गुड़ाई और सिंचाई करने में सुगमता हो।

सिंचाई एवं पोषण प्रबंधन

पौधों को समय पर और सही मात्रा में पानी तथा पोषक तत्व देना उनकी वृद्धि के लिए आवश्यक है। सिंचाई की तकनीक पौधों की जड़ों के पास हल्की सिंचाई करनी चाहिए। गर्मियों में प्रतिदिन सुबह या शाम को पानी देना चाहिए, जबकि सर्दियों में 3 से 4 दिनों के अंतराल पर पानी दिया जा सकता है। आधुनिक गृह वाटिका में 'टपकन सिंचाई' (ड्रिप) प्रणाली का प्रयोग जल की बचत के लिए सर्वोत्तम है।

पोषणः रासायनिक उर्वरकों के स्थान पर केवल तरल जैविक खाद, जैसे- जीवामृत, पंचगव्य या वर्मीवॉश का छिड़काव करना चाहिए। इससे पौधों को सभी आवश्यक सूक्ष्म पोषक तत्व प्राप्त होते हैं।

कीट एवं रोग प्रबंधन (प्राकृतिक उपाय)

गृह वाटिका का मुख्य उद्देश्य विषमुक्त भोजन प्राप्त करना है, इसलिए यहाँ रासायनिक कीटनाशकों का प्रयोग पूरी तरह वर्जित होना चाहिए।

- **नीम का काढ़ाः** कीटों के नियंत्रण के लिए नीम के तेल या नीम की पत्तियों को पानी में उबालकर बनाया गया घोल सबसे प्रभावशाली प्राकृतिक कीटनाशक है।
- **मिश्रित खेतीः** सब्जियों के बीच में गेंदे के पौधे लगाने से हानिकारक कीट मुख्य फसल से दूर रहते हैं।
- **हाथ से नियंत्रणः** शुरुआती अवस्था में हानिकारक कीड़ों या उनके अंडों को हाथ से हटाकर नष्ट कर देना चाहिए। नियमित रूप से वाटिका की सफाई और खरपतवार नियंत्रण से रोगों का प्रकोप आधा हो जाता है।

निष्कर्ष

गृह वाटिका केवल समय बिताने का साधन नहीं, बल्कि आत्मनिर्भरता की ओर एक प्रगतिशील कदम है। यह हमारे परिवार को पोषक तत्वों से भरपूर, ताजा और रसायन मुक्त भोजन प्रदान करती है। वर्तमान समय में जब बीमारियाँ तेजी से बढ़ रही हैं, प्रत्येक घर में एक छोटी ही सही, परंतु गृह वाटिका का होना अत्यंत आवश्यक है। यह हमारे पर्यावरण को शुद्ध रखती है और हमें प्रकृति के समीप लाती है।

संदर्भ

Indian Agricultural Research Institute (IARI), New Delhi – Home Gardening and Vegetable Production Manual.

Indian Institute of Horticultural Research (IIHR), Bengaluru – 'URan Horticulture' and Nutrition Garden Guidelines.

Indira Gandhi Krishi Vishwavidyalaya (IGKV), Raipur – Vegetable Production Manual and Agricultural Calendar Adapted to Chhattisgarh's Climate.

Dr. K. L. Chadha – 'Handbook of Horticulture', I.C.A.R. (Indian Council of Agricultural Research) Publications.

Krishi Vigyan Kendra (KVK), Narayanpur – Local-level Nutritional Security and Organic Pest Control Guidelines.

❖❖

ISSN No. 2583-3316

खेती के जोखिम भरे पहलू एवं बचाव

नवीन कुमार शुक्ला*, मान्धाता सिंह एवं अशोक कुमार सिंह

मृदा विज्ञान एवं कृषि रसायन विभाग, श्री मुरली मनोहर टाउन स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बलिया, उत्तर-प्रदेश

पत्राचारकर्ता: mintushukla8423@gmail.com

परिचय

भारत में हमेशा से देश की आत्मा और हृदय माना जाने वाला किसान पिछले तीन दशकों से अपनी बिगड़ती स्थिति का सामना कर रहा है। भारत में खेती एक जोखिम भरा व्यवसाय बनता जा रहा है क्योंकि यहाँ किसानों को फसलों की बुआई से लेकर अपने उत्पादों के लिए बाजार तलाशने तक अनेक जोखिमों का सामना करना पड़ता है। खेती में जोखिम कई कारणों से उत्पन्न होता है। कृषि में जोखिम फसल उत्पादन, मौसम की अनिश्चितता, उपज की कीमतों, ऋण और नीतिगत निर्णयों से संबंधित है। कीमतों में जोखिम का प्रमुख कारण पारिश्रमिक और लागत से कम आय, बाजार की अनुपस्थिति और बिचैलियों द्वारा अत्यधिक लाभ अर्जित करना है, और सभी समस्याओं से अवगत होते हुए भी लोकतांत्रिक प्रतिनिधियों की उदासीनता बनी हुई है। कृषि ऐसा क्षेत्र है, जो मौसम के बदलाव, प्राकृतिक आपदाओं, बाजार में कीमतों की अस्थिरता और कीटों के हमलों से लगातार प्रभावित होता है। कृषि में जोखिम प्रबंधन का अर्थ संभावित हानियों से सुरक्षा और अनिश्चितताओं के बीच आय को स्थिर बनाए रखने के लिए अपनाई गई तकनीकों से है।

देश में अनेक किसान ऋण के बोझ से मुक्ति पाने के लिए आत्म हत्या कर लेते हैं, क्योंकि कुछ मामलों में सरकार प्रभावित परिवार को मुआवजा भी देती है। यह स्थिति आत्म हत्या के लिए एक नकारात्मक प्रेरणा प्रदान करती है। सरकारी आँकड़ों के अनुसार हर साल 10,000-12,000 किसान आत्महत्या कर रहे हैं। यह समस्या सबसे अधिक महाराष्ट्र, कर्नाटक, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, आंध्रप्रदेश और तमिलनाडु जैसे राज्यों में देखने को मिलती है। हालांकि सरकार कीमतों और उत्पादन जोखिमों को संतुलित करने के लिए कई योजनायें लेकर आई है, लेकिन इसका कार्यान्वयन सही से न होने, चर्चित न होने और जानकारी की कमी के कारण सफल नहीं हो पा रहा है।

खेती में जोखिम के कारण

खेती में जोखिम के कई प्रमुख कारन है, जिनमे से कुछ निम्नलिखित हैः

क. निवेश का आभाव

कृषि क्षेत्रों में निवेश में लगातार कमी हुई है। कृषि में निवेश करना अन्य बेंचरो में निवेश की तुलना में कम लाभदायक होता है। अन्य क्षेत्रों में निवेश कृषि के बजाय उच्च आय देने वाले सिद्ध होते है, परिणामस्वरूप कृषि में निवेश में कमी हुई है और इस क्षेत्र का नुकसान हो रहा है।

ख. उत्पादन या उपज का जोखिम

यह जोखिम इसलिए होता है क्योंकि कृषि कई ऐसे अनियंत्रित कारकों से प्रभावित होती है, जो अक्सर मौसम से जुड़े होते हैं। इनमें अत्यधिक या कम बारिश होना, बहुत अधिक या कम तापमान (पाला/गर्मी), ओलावृष्टि, कीट और बीमारियाँ शामिल हैं।

ग. प्राकृतिक संसाधनों के सही उपयोग का आभाव

जब खेती की बात आती है तो इस क्षेत्र के लिए भारत ने अपने प्राकृतिक संसाधनों को संरक्षित और विकसित अपेक्षाकृत नहीं किया है, मुख्य रूप से सिंचाई से सम्बन्धित संसाधनों को सुरक्षित करने के लिए कम सार्थक प्रयास किया गया है, महाराष्ट्र और अन्य क्षेत्रों में प्रवास की कहानियों और गंभीर जल संकट से स्थिति की गम्भीरता स्वतः स्पष्ट हो जाती है। नहरों के विकास पर सार्थक प्रयास नहीं हो पा रहे हैं। साथ ही तालाबों एवं जलाशयों पर बढ़ते अतिक्रमण थमने का नाम नहीं ले रहा हैं।

घ. जलवायु परिवर्तन

तापमान में असामान्यता के कारण व जलवायु परिवर्तन के कारण भी कृषि पर प्रतिकूल प्रभाव परिलक्षित हो रहे है। तापमान में वृद्धि के कारण धान तथा गेंहूँ के आलावा अन्य

फसलों के उत्पादन में कमी दर्ज की जा रही है। सिंचाई हेतु पर्याप्त जल उपलब्ध नहीं होने के कारण फसलें बरर्बाद हो रही है। जलवायु परिवर्तन के कारण अर्द्धशुष्क क्षेत्रों व शुष्क वाले क्षेत्रों में उचित जल प्रबन्ध व जल उपयोग व्यवस्था विद्यमान न होने के कारण देश में भू-जलस्तर तेजी से सामान्य स्तर नीचे की ओर गिरता जा रहा है तथा मिट्टी की उर्वरता में कमी एवं जैव-विविधता में लगातार गिरावट होने की वजह से कृषि व्यवस्था पर विपरीत प्रभाव पड़ रहा है।

ङ. मूल्य या बाजार का जोखिम

यह जोखिम उत्पादन शुरू करने की प्रतिबद्धता (फैसले) के बाद, उत्पाद (फसल/पशुधन) या इनपुट (खाद, बीज आदि) की कीमतों में होने वाले बदलावों को दर्शाता है। कृषि में, उत्पादन आम तौर पर एक लंबी प्रक्रिया होती है। उदाहरण के लिए, पशुधन उत्पादन में आमतौर पर चारे और उपकरणों में लगातार निवेश की आवश्यकता होती है, जिसका प्रतिफल (मुनाफा) कई महीनों या वर्षों तक नहीं मिलता है। चूँकि बाजार आमतौर पर जटिल होते हैं और इनमें घरेलू और अंतर्राष्ट्रीय दोनों पहलू शामिल होते हैं, इसलिए दुनिया के सुदूर (दूरदराज के) क्षेत्रों में होने वाली घटनाओं से भी उत्पादकों के मुनाफे पर बहुत बड़ा असर पड़ सकता है।

च. कीमतों पर अत्यधिक हस्तक्षेप

न्यूनतम सर्मथन मूल्य पर किसान के उत्पाद की खरीददारी से सभी किसान सहमत नहीं है क्योंकि ढ़ेरो आरोप प्रत्यारोप से घीरकर क्रय-विक्रय केन्द्र चल रहे हैं। फसलों के अलावा अस्थिर कीमतों, कृषि उत्पादों के आन्दोलन पर प्रतिबन्ध एवं वैश्विक बाजारो तक पहुँच की कमी है। अनेको (औषधीय एवं सुगंध, सब्जियों, मसाले वाली) फसलों के समर्थन मूल्य के अभाव में भ्रमित बाजार व्यवस्था बनी हुई है।

छ. संस्थागत जोखिम

यह जोखिम कृषि को प्रभावित करने वाली नीतियों और सरकारी नियमों में बदलाव के कारण पैदा होता है। इस प्रकार का जोखिम आम तौर पर उत्पादन पर अप्रत्याशित (अचानक) प्रतिबंधों, या इनपुट और आउटपुट की कीमतों में बदलाव के रूप में सामने आता है। उदाहरण के लिए, कीटनाशकों (फसलों के लिए) या दवाओं (पशुधन के लिए) के उपयोग के संबंध में सरकारी नियमों में बदलाव उत्पादन की लागत को बदल सकता है। इसी तरह, किसी विदेशी देश द्वारा किसी विशेषफसल के आयात को सीमित करने के फैसले से उस फसल की कीमत कम हो सकती है। अन्य संस्थागत जोखिम पशुओं के गोबर/मल-मूत्र के निपटान को प्रभावित करने वाली नीतियों, संरक्षण प्रथाओं या भूमि उपयोग में प्रतिबंधों, या आयकर नीति या ऋण (लोन) नीति में बदलाव से भी उत्पन्न हो सकते हैं।

ज. लागतों पर अनियन्त्रण

कृषि रसायन, उर्वरक खाद, पेस्टीसाइड जैसे आयामों के कीमत तो उपलब्ध है परन्तु उनकी गुणवत्ता की कोई सत्यता नहीं है। अनेकों बार उपलब्धता भी निष्क्रिय पड़ जाती है। अतः आपूर्ति तथा गुणवत्ता पर नियंत्रण का आभाव है।

कृषि में जोखिम दूर करने के उपाय

कृषि में जोखिम को सम्पूर्णरूप से तो समाप्त नहीं किया जा सकता परन्तु निम्नलिखित उपायों को अपनाकर इसके प्रभाव को कम किया जा सकता है जैसे,

- घरेलू और अंतर्राष्ट्रीय बाजारों में माँग-आपूर्ति की गतिशीलता के कारण उत्पन्न बाजार जोखिम को संबोधित करने के लिए अनुबंध कृषि और किसानों से उत्पादों की सीधी खरीद की अनुमति देने का सुझाव दिया जाना चाहिए।
- फसल बीमा योजना एवं इलेक्ट्रॉनिक राष्ट्रीय कृषि बाजार दोनों प्रभावी प्रावधान हैं, लेकिन यदि इनका कार्यान्वयन सही ढंग से किया जाए, तो ये ग्राउंड लेवल पर सकारात्मक परिणाम दे सकते हैं।
- अनाज, तिलहन, दाल, गन्ना और कपास की फसलों की उत्पादकता बढ़ाने के लिए आधुनिक तकनीकों को अपनाने के लिए किसानों को सजग करना होगा ताकि कृषि विज्ञान केन्द्र और कृषि संस्थान अधिक सक्रिय हो सकें।
- एक फसल की निर्भरता को कम करके विभिन्न फसलें उगाना या पशुपालन को शामिल करना, ताकि यदि एक फसल को नुकसान हो तो दूसरी से लाभ प्राप्त किया जा सके।
- बुवाई से पूर्व खरीदार के साथ एक निर्धारित मूल्य पर सहमति करना, ताकि फसल की कटाई के समय बाजार में कीमतों के उतार-चढ़ाव से सुरक्षा प्राप्त हो सके। उचित मौसम पूर्वानुमान, मिट्टी का विश्लेषण और ड्रिपसिंचाई जैसी तकनीकों के माध्यम से उत्पादन के खतरों को कम करना।
- मिट्टी की गुणवत्ता बनाए रखना और जल की बचत के उपाय अपनाना ताकि सूखे या अधिक बरसात के असर को घटाया जा सके।
- गाँवों में गोदामों, शीत गृह और बीज भंडारण की सुविधाओं

को प्राथमिकता देनी पड़ेगी। इसके साथ ही कृषि उत्पादों के परिवहन के लिए वातानुकूलित वाहनों की व्यवस्था पर भी ध्यान दिया जाएगा।

- रसायनों पर निर्भरता कम करने के लिए प्राकृतिक कृषि पद्धतियों को अपनाना चाहिए, जिससे मिट्टी की सेहत सुधरे और इनपुट लागत कम हो सके।
- किसानों को पारंगत करने की आवश्यकता है, क्योंकि पिछले साल की फसल के कीमतों के आधार पर पुनः उसी फसल के रोपण का फैसला फायदेमन्द नहीं हो सकता है। किसानों को बुआई के एक निश्चित पैर्टन को अपनाना होगा।
- पूरे देश में किसानों को ऋण माफी के लिए उत्तर-प्रदेश मॉडल को अपनाना चाहिए, जिसमें सभी छोटे एवं सीमान्त किसानों को एक लाख तक के ऋण माफ कर दिया गया।

निष्कर्ष

कृषि में जोखिम को पूरी तरह समाप्त नहीं किया जा सकता, लेकिन सही रणनीतियों (जैसे विविधता और बीमा) तथा तकनीकी समावेश के माध्यम से इसके प्रभाव को काफी हद तक कम किया जा सकता है। किसानों की दीर्घकालिक आय सुरक्षा और स्थायी विकास के लिए आधुनिक कृषि तकनीकों के साथ जोखिम प्रबंधन उपायों (विशेषकर बीमा) को अपनाना अनिवार्य है। उत्पादक संघ और वायदा बाजार जैसी व्यवस्थाओं को किसानों के बीच लाना आवश्यक है ताकि वे उनका लाभ उठा सकें। कृषि में जोखिम की अधिकता है, इसलिए किसानों को सुरक्षा प्रदान करने के लिए फसल बीमा योजना को व्यापक और तार्किक बनाते हुए बीमा प्रिमियम दरको कृषकों की आय के अनुपात में रखना उचित होगा। साथ ही, विकसित देशों का मुकाबला करने के लिए कृषि को उद्योग का दर्जा देकर उसे व्यवहारिक बनाना चाहिए। चूँकि विकास दर बढ़ाने की कुंजी कृषि है, इस क्षेत्र के लिए ठोस और प्रभावी नीतियों के क्रियान्वयन से सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था की धुंधली तस्वीर को उजागर करना संभव होगा।

❖❖

ISSN No. 2583-3316

भारत में पुष्प विज्ञान : एक उभरता हुआ कृषि-व्यवसाय

खुशबू शर्मा एवं मेधा साहा*

पुष्प विज्ञान एवं भू-दृश्य विभाग, पंडित किशोरीलाल शुक्ल उद्यानिकी महाविद्यालय एवं अनुसंधान केंद्र, राजनांदगांव, महात्मा गांधी उद्यानिकी एवं वानिकी विश्वविद्यालय, दुर्ग, छत्तीसगढ़

पत्राचारकर्ता: medhasahams@gmail.com

परिचय

पुष्प विज्ञान उद्यानिकी की एक महत्वपूर्ण शाखा है, जिसमें फूलों एवं सजावटी पौधों का उत्पादन, संवर्धन, विपणन तथा उपयोग शामिल है। भारत में यह कृषि का एक तेजी से विकसित होने वाला क्षेत्र है, जो किसानों को अधिक आय, रोजगार एवं निर्यात के अवसर प्रदान करता है। बढ़ती जनसंख्या, शहरीकरण, बागवानी के प्रति रुचि तथा धार्मिक एवं सामाजिक आयोजनों में फूलों की बढ़ती माँग ने पुष्पविज्ञान को एक लाभकारी कृषि-व्यवसाय के रूप में स्थापित किया है।

भारत में पुष्प विज्ञान का महत्व

भारत की विविध जलवायु परिस्थितियाँ विभिन्न प्रकार के फूलों की खेती के लिए अत्यंत अनुकूल हैं। फूलों का उपयोग धार्मिक अनुष्ठानों, विवाह समारोह, सजावट, परिदृश्य निर्माण (लैंडस्केपिंग), इत्र उद्योग तथा औषधीय प्रयोजनों में किया जाता है। कम भूमि में अधिक लाभ प्राप्त होने के कारण पुष्प विज्ञान किसानों के लिए आय का एक महत्वपूर्ण स्रोत बन गया है। भारत में गेंदा, गुलाब, चमेली, रजनीगंधा, गुलदाउदी, जरबेरा, कार्नेशन, ग्लैडियोलस एवं ऑर्किड जैसी अनेक पुष्प फसलें व्यावसायिक रूप से उगाई जाती हैं।

कृषि व्यवसाय के रूप में पुष्पोत्पादन का महत्व

व्यवसाय की दृस्टि से पुष्पोपादन के मुख्या महत्व इस प्रकार है

क. उच्च आर्थिक लाभ

पुष्पोत्पादन पारंपरिक फसलों की तुलना में प्रति इकाई क्षेत्रफल अधिक आय प्रदान करता है। व्यावसायिक स्तर पर फूलों की खेती किसानों के लिए वर्षभर आय का एक अच्छा स्रोत बन सकती है।

ख. रोजगार सृजन

पुष्पोत्पादन क्षेत्र उत्पादन, कटाई, ग्रेडिंग, पैकेजिंग, परिवहन, विपणन तथा निर्यात जैसे विभिन्न कार्यों में रोजगार के अवसर उत्पन्न करता है। यह विशेष रूप से ग्रामीण महिलाओं और लघु कृषकों के लिए लाभकारी है।

ग. निर्यात की संभावनाये

भारत से गुलाब, गेंदा, गुलदाउदी, कार्नेशन, ऑर्किड तथा ग्लैडियोलस जैसे फूलों का निर्यात यूरोप, मध्य-पूर्व, जापान तथा दक्षिण-पूर्व एशियाई देशों में किया जाता है। इससे विदेशी मुद्रा अर्जित होती है और राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था को मजबूती मिलती है।

घ. कृषि विविधीकरण

पुष्पोत्पादन किसानों को पारंपरिक फसलों के अतिरिक्त एक वैकल्पिक एवं लाभकारी कृषि प्रणाली अपनाने का अवसर प्रदान करता है, जिससे कृषि में विविधता बढ़ती है।

ङ. सहायक उद्योगों का विकास

पुष्पोत्पादन के विकास से नर्सरी प्रबंधन, भूदृश्य सज्जा (लैंडस्केपिंग), पुष्प प्रसंस्करण, गुलदस्ता निर्माण, आवश्यक तेल निष्कर्षण तथा पुष्प सजावट जैसे सहायक उद्योगों को भी बढ़ावा मिलता है।

प्रमुख पुष्पोत्पादन उत्पाद

- कटे हुए फूल (गुलाब, कार्नेशन, जरबेरा, ग्लैडियोलस)
- ढीले फूल (गेंदा, चमेली, रजनीगंधा)
- गमले वाले पौधे
- सजावटी पर्णीय पौधे
- पुष्प बीज एवं कंद
- सूखे फूल एवं पुष्प शिल्प उत्पाद

आर्थिक एवं रोजगार संबंधी महत्व

पुष्प विज्ञान एक श्रम-प्रधान उद्योग है, जो उत्पादन, कटाई, पैकिंग, परिवहन, पुष्प सज्जा तथा विपणन जैसे विभिन्न क्षेत्रों में रोजगार के अवसर उत्पन्न करता है। यह विशेष रूप से

ग्रामीण युवाओं एवं महिलाओं के लिए स्वरोजगार का प्रभावी माध्यम है। इसके अतिरिक्त, सूखे फूल, आवश्यक तेल, पुष्प अर्क तथा सजावटी उत्पादों के निर्माण से मूल्य संवर्धन कर अतिरिक्त आय प्राप्त की जा सकती है।

निर्यात की संभावनायें

भारत से गुलाब, कार्नेशन, ऑर्किड, सूखे फूल तथा सजावटी पौधों का निर्यात अनेक देशों में किया जाता है। बेहतर पैकेजिंग, शीत-श्रृंखला (Cold Chain) एवं परिवहन सुविधाओं के विकास से अंतरराष्ट्रीय बाजार में भारतीय पुष्पों की माँग लगातार बढ़ रही है।

चुनौतियाँ

पुष्प विज्ञान क्षेत्र में फूलों की नाशवान प्रकृति, शीत भंडारण सुविधाओं की कमी, बाजार मूल्य में उतार-चढ़ाव तथा उच्च परिवहन लागत जैसी समस्यायें विद्यमान हैं। इन चुनौतियों के समाधान हेतु आधुनिक तकनीकों एवं बेहतर विपणन व्यवस्था की आवश्यकता है।

सरकारी सहायता

भारत सरकार राष्ट्रीय बागवानी मिशन (NHM), एकीकृत बागवानी विकास मिशन (MIDH) तथा संरक्षित खेती कार्यक्रमों के माध्यम से पुष्पोत्पादन को प्रोत्साहित कर रही है। ग्रीनहाउस निर्माण, सिंचाई सुविधाओं, गुणवत्तायुक्त रोपण सामग्री तथा कटाई उपरांत प्रबंधन के लिए वित्तीय सहायता प्रदान की जाती है।

भविष्य की संभावनायें

भारत में पुष्पोत्पादन का भविष्य अत्यंत उज्ज्वल है। शहरीकरण, आय में वृद्धि तथा विवाह, धार्मिक आयोजनों, त्योहारों, होटल उद्योग और कॉर्पोरेट कार्यक्रमों में फूलों की बढ़ती माँग इस क्षेत्र के विकास को गति दे रही है। ग्रीनहाउस, शेडनेट, ड्रिप सिंचाई तथा अन्य आधुनिक तकनीकों के उपयोग से उत्पादन एवं गुणवत्ता में वृद्धि हो रही है। इसके अतिरिक्त, ऑनलाइन फूल वितरण सेवाओं और निर्यात बाजारों के विस्तार से नए व्यावसायिक अवसर उत्पन्न हो रहे हैं। अनुसंधान एवं विकास, मूल्य संवर्धन, बेहतर विपणन व्यवस्था तथा कटाई उपरांत प्रबंधन के माध्यम से इस उद्योग को और अधिक सुदृढ़ बनाया जा सकता है।

निष्कर्ष

पुष्प विज्ञान भारत में एक उभरता हुआ एवं लाभकारी कृषि-व्यवसाय है, जो किसानों की आय बढ़ाने, रोजगार सृजन करने तथा निर्यात को प्रोत्साहित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। आधुनिक तकनीकों, सरकारी सहायता एवं बढ़ती बाजार मांग के कारण भविष्य में इस क्षेत्र के और अधिक विस्तार एवं विकास की व्यापक संभावनायें हैं। अतः पुष्प विज्ञान भारतीय कृषि के विविधीकरण तथा ग्रामीण आर्थिक विकास का एक महत्वपूर्ण आधार बनता जा रहा है।

❖❖

ISSN No. 2583-3316

जलवायु परिवर्तन से प्रभावित फलदार फसलें: किसानों के सामने नई चुनौती

कुलदीप कुमार शुक्ला[1]*, सम्पूर्णा नन्द सिंह[2], लवकुश पाण्डेय[3], वर्तिका सिंह[4], नलिन कुमार सिंह[5] काजल मिश्रा[6] एवं ईशु शर्मा[7]

[1]कृषि विभाग एवं [5]भूगोल विभाग, श्री विशंभर दयाल त्रिपाठी राजकीय महाविद्यालय, रसूलपुर पूरी उन्नाव, संघटक महाविद्यालय, छत्रपति शाहूजी महाराज विश्वविद्यालय, कानपुर, उत्तर प्रदेश

[2]कृषि विभाग, इंटीग्रल विश्वविद्यालय, लखनऊ, उत्तर प्रदेश

[3]कृषि विभाग, प्रो. राजेन्द्र सिंह (रज्जू भैया) विश्वविद्यालय, नैनी, प्रयागराज, उत्तर प्रदेश

[4]औद्यानिकी (फल विज्ञान), आईटीएम विश्वविद्यालय, ग्वालियर, मध्य प्रदेश

[6]पादप रोग विज्ञान विभाग, चन्द्रशेखर आजाद कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, कानपुर, उत्तर प्रदेश

[7]पोस्टहार्वेस्ट प्रौद्योगिकी, जैव-प्रसंस्करण एवं पर्यावरण विज्ञान विभाग, राष्ट्रीय खाद्य प्रौद्योगिकी उद्यमिता एवं प्रबंधन संस्थान (निफ्टेम), कुंडली, हरियाणा

पत्राचारकर्ता: shuklahort7854@gmail.com

परिचय

वर्तमान समय में जलवायु परिवर्तन पूरी दुनिया के लिए गंभीर चिंता का विषय बन चुका है। बढ़ता तापमान, अनियमित वर्षा, सूखा, बाढ़, ओलावृष्टि तथा मौसम में अचानक परिवर्तन जैसी घटनाएँ कृषि क्षेत्र को सीधे प्रभावित कर रही हैं। विशेष रूप से फलदार फसलें जलवायु के प्रति अत्यधिक संवेदनशील होती हैं, इसलिए बदलती जलवायु का प्रभाव इन पर अधिक दिखाई दे रहा है। भारत जैसे कृषि प्रधान देश में फल उत्पादन किसानों की आय, पोषण सुरक्षा तथा रोजगार का महत्वपूर्ण स्रोत है। ऐसे में जलवायु परिवर्तन फल उत्पादक किसानों के सामने नई चुनौती बनकर उभर रहा है।

फल फसलें सामान्यतः बहुवर्षीय (Perennial) होती हैं और इनके विकास, पुष्पन, फलन तथा गुणवत्ता के लिए अनुकूल तापमान, आर्द्रता एवं वर्षा की आवश्यकता होती है। जलवायु में थोड़ा-सा असंतुलन भी इन फसलों की उत्पादकता पर गहरा प्रभाव डालता है। पिछले कुछ वर्षों में मौसम की अनिश्चितता के कारण फल उत्पादन में गिरावट, फलों की गुणवत्ता में कमी तथा कीट एवं रोगों के प्रकोप में वृद्धि देखी जा रही है। उदाहरण के लिए, उत्तर भारत में आम की फसल पर असमय वर्षा एवं ओलावृष्टि का गंभीर प्रभाव पड़ रहा है। फूल आने के समय यदि अधिक वर्षा हो जाए तो फूल झड़ जाते हैं तथा फल बनने की प्रक्रिया प्रभावित होती है। इसी प्रकार हिमाचल प्रदेश एवं जम्मू-कश्मीर में बढ़ते तापमान के कारण सेब उत्पादन ऊँचाई वाले क्षेत्रों की ओर स्थानांतरित हो रहा है। पहले जहाँ मध्यम ऊँचाई वाले क्षेत्रों में अच्छी गुणवत्ता के सेब पैदा होते थे, वहीं अब पर्याप्त 'चिलिंग आवर्स' न मिलने के कारण उत्पादन में कमी आ रही है।

महाराष्ट्र एवं कर्नाटक जैसे राज्यों में अंगूर उत्पादक किसान असमय वर्षा के कारण भारी नुकसान झेल रहे हैं। पकने के समय वर्षा होने से अंगूर में फफूँद रोग तेजी से फैलते हैं तथा फलों की गुणवत्ता पर भी अधिक प्रभाव पड़ता है। इसी प्रकार केला उत्पादक क्षेत्रों में तेज हवायें और अत्यधिक तापमान पौधों को नुकसान पहुँचाते हैं, जिससे फल का आकार छोटा रह जाता है और उत्पादन घट जाता है।

लीची एक महत्वपूर्ण उपोष्णकटिबंधीय फल फसल है, जिसका उत्पादन जलवायु परिस्थितियों पर अत्यधिक निर्भर करता है। भारत में बिहार, उत्तर प्रदेश तथा उत्तराखंड लीची उत्पादन के प्रमुख क्षेत्र हैं, जहाँ जलवायु परिवर्तन का प्रभाव स्पष्ट रूप से देखा जा रहा है। वर्तमान समय में तापमान में वृद्धि, अनियमित वर्षा, सूखा, तेज हवायें एवं आँधी जैसी समस्यायें बढ़ रही हैं, जिनका प्रतिकूल प्रभाव लीची उत्पादन पर पड़ रहा है। बिहार

के मुजफ्फरपुर क्षेत्र में अत्यधिक गर्मी एवं लू के कारण फलों की गुणवत्ता प्रभावित हो रही है, जबकि उत्तर प्रदेश एवं उत्तराखंड में असमय वर्षा तथा तापमान परिवर्तन से पुष्पन एवं फल विकास प्रभावित हो रहा है। अधिक गर्मी के कारण छोटे फल झड़ने लगते हैं तथा मिट्टी की नमी में अचानक परिवर्तन से फलों के फटने की समस्या बढ़ जाती है। इसके अतिरिक्त अधिक नमी एवं बदलती जलवायु के कारण रोग एवं कीटों का प्रकोप भी बढ़ रहा है। जल की कमी से पौधों की वृद्धि रुक जाती है तथा उत्पादन में भारी गिरावट आती है।

जलवायु परिवर्तन का प्रभाव केवल उत्पादन तक सीमित नहीं है, बल्कि इसका सीधा असर किसानों की आर्थिक स्थिति पर भी पड़ता है। उत्पादन घटने से किसानों की आय कम होती है, जबकि कीट एवं रोग नियंत्रण, सिंचाई तथा अन्य कृषि कार्यों की लागत बढ़ जाती है। छोटे एवं सीमांत किसान इन परिस्थितियों से सबसे अधिक प्रभावित होते हैं, क्योंकि उनके पास सीमित संसाधन होते हैं। इसके अतिरिक्त, बदलती जलवायु मधुमक्खियों एवं अन्य परागण करने वाले कीटों की संख्या को भी प्रभावित कर रही है। फल फसलों में परागण की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। यदि परागण सही ढंग से न हो, तो फलन कम हो जाता है और उत्पादन प्रभावित होता है। हालाँकि, वैज्ञानिक तकनीकों एवं जलवायु-स्मार्ट कृषि पद्धतियों को अपनाकर इन समस्याओं के प्रभाव को काफी हद तक कम किया जा सकता है। ड्रिप सिंचाई, मल्चिंग, वर्षा जल संचयन, जलवायु सहनशील किस्मों का विकास तथा मौसम आधारित कृषि सलाह किसानों के लिए उपयोगी सिद्ध हो सकती हैं।

इस प्रकार, जलवायु परिवर्तन केवल पर्यावरणीय समस्या नहीं है, बल्कि यह कृषि एवं बागवानी क्षेत्र के लिए भी गंभीर चुनौती बन चुका है। आवश्यकता इस बात की है कि किसान, वैज्ञानिक, कृषि विश्वविद्यालय एवं सरकार मिलकर टिकाऊ एवं वैज्ञानिक बागवानी पद्धतियों को बढ़ावा दें, ताकि भविष्य में फल उत्पादन एवं किसानों की आजीविका को सुरक्षित रखा जा सके।

जलवायु परिवर्तन

जब पृथ्वी के मौसम में लंबे समय तक महत्वपूर्ण परिवर्तन होते हैं, जैसे तापमान में वृद्धि, वर्षा के स्वरूप में बदलाव, सूखा, बाढ़, चक्रवात, ओलावृष्टि तथा अत्यधिक गर्मी या ठंड की घटनाओं में वृद्धि, तो इसे जलवायु परिवर्तन कहा जाता है। यह परिवर्तन धीरे-धीरे पूरे पर्यावरण, कृषि, जल संसाधनों तथा मानव जीवन को प्रभावित करता है।

वर्तमान समय में जलवायु परिवर्तन विश्व की सबसे बड़ी पर्यावरणीय चुनौतियों में से एक बन चुका है। पृथ्वी का औसत तापमान लगातार बढ़ रहा है, जिसके कारण मौसम का संतुलन बिगड़ता जा रहा है। कभी अत्यधिक वर्षा से बाढ़ की स्थिति बन जाती है, तो कभी लंबे समय तक वर्षा न होने से सूखा पड़ जाता है। इसी प्रकार, असमय ओलावृष्टि, तेज हवायें तथा गर्मी की लहरें कृषि क्षेत्र को गंभीर रूप से प्रभावित कर रही हैं।

जलवायु परिवर्तन का मुख्य कारण वातावरण में ग्रीनहाउस गैसों की बढ़ती मात्रा भी है। कार्बन डाइऑक्साइड (CO_2), मेथेन (CH_4) तथा नाइट्रस ऑक्साइड (N_2O) जैसी गैसें सूर्य से आने वाली ऊष्मा को वातावरण में रोक लेती हैं, जिससे पृथ्वी का तापमान बढ़ने लगता है। इसे 'ग्रीनहाउस प्रभाव' कहा जाता है।

इन गैसों की वृद्धि के पीछे मानव गतिविधियाँ प्रमुख रूप से जिम्मेदार हैं, जैसे-

- जीवाश्म ईंधनों (कोयला, पेट्रोल, डीजल) का अत्यधिक उपयोग
- वनों की कटाई
- औद्योगीकरण एवं शहरीकरण
- प्रदूषण में वृद्धि
- रासायनिक उर्वरकों एवं कीटनाशकों का अत्यधिक उपयोग

भारत जैसे कृषि प्रधान देश में जलवायु परिवर्तन का प्रभाव कृषि एवं बागवानी क्षेत्र पर स्पष्ट रूप से दिखाई दे रहा है। विशेष रूप से फलदार फसलें जलवायु के प्रति अत्यधिक संवेदनशील होती हैं। तापमान, वर्षा एवं आर्द्रता में थोड़ा-सा परिवर्तन भी इनके उत्पादन एवं गुणवत्ता को प्रभावित कर सकता है।

उदाहरण के लिए, उत्तर भारत में आम की फसल पर असमय वर्षा एवं ओलावृष्टि का नकारात्मक प्रभाव पड़ रहा है, जबकि हिमालयी क्षेत्रों में बढ़ते तापमान के कारण सेब उत्पादन प्रभावित हो रहा है। इसी प्रकार, अंगूर, केला, संतरा एवं अनार जैसी फसलों में भी जलवायु परिवर्तन के कारण उत्पादन में कमी एवं रोगों का प्रकोप बढ़ता जा रहा है।

इस प्रकार, जलवायु परिवर्तन केवल पर्यावरणीय समस्या नहीं है, बल्कि यह किसानों की आय, खाद्य सुरक्षा एवं कृषि अर्थव्यवस्था के लिए भी गंभीर चुनौती बन चुका है।

फल फसलों पर जलवायु परिवर्तन का प्रभाव

फल फसलों पर जलवायु परिवर्तन के निम्नलिखित प्रभाव इस प्रकार हैः

क. तापमान में वृद्धि

फल फसलों की वृद्धि एवं विकास के लिए संतुलित तापमान

अत्यंत आवश्यक होता है। प्रत्येक फलदार फसलों के लिए एक निश्चित तापमान सीमा निर्धारित होती है, जिसके भीतर पौधों की जैविक क्रियायें, जैसे प्रकाश संश्लेषण, श्वसन, पुष्पन, फलन एवं फल विकास सुचारु रूप से संपन्न होते हैं। परंतु वर्तमान समय में वैश्विक तापमान में लगातार वृद्धि तथा कई क्षेत्रों में अत्यधिक कम तापमान की घटनाओं के कारण फल फसलों की सामान्य वृद्धि एवं उत्पादकता प्रभावित हो रही है।

अत्यधिक गर्मी के कारण पौधों में जल की कमी होने लगती है, जिससे पौधों पर तनाव (Stress) बढ़ जाता है। इसका सीधा प्रभाव फूलों एवं फलों पर पड़ता है। उदाहरण, आम की फसल में मंजर निकलने के समय यदि तापमान अधिक हो जाए, तो मंजर झुलसने लगते हैं तथा फल बनने से पहले ही गिर जाते हैं (Fruit Drop)। उत्तर प्रदेश, बिहार एवं महाराष्ट्र के कई क्षेत्रों में यह समस्या लगातार बढ़ रही है। इसी प्रकार, अंगूर, केला एवं लीची जैसी फसलों में अत्यधिक गर्मी के कारण फलों पर 'सनबर्न' के लक्षण दिखाई देते हैं, जिससे फलों की गुणवत्ता एवं बाजार मूल्य कम हो जाता है।

दूसरी ओर, अत्यधिक कम तापमान भी फल फसलों के लिए हानिकारक है। पाला (Frost) पड़ने से फूल एवं फल नष्ट हो जाते हैं। विशेष रूप से लीची, आम, पपीता एवं केला जैसी उष्णकटिबंधीय फसलें ठंड के प्रति अत्यधिक संवेदनशील होती हैं।

सेब जैसी शीतोष्ण फलदार फसलों को सर्दियों में निश्चित समय तक कम तापमान की आवश्यकता होती है, जिसे 'चिलिंग आवर्स' कहा जाता है। हिमाचल प्रदेश एवं जम्मू-कश्मीर में बढ़ते तापमान के कारण चिलिंग आवर्स में कमी आ रही है, जिससे सेब उत्पादन एवं गुणवत्ता प्रभावित हो रही है। परिणामस्वरूप, सेब की खेती अधिक ऊँचाई वाले क्षेत्रों की ओर स्थानांतरित होती जा रही है।

ख. बेमौसमी वर्षा, अनियमित वर्षा एवं सूखा

जलवायु परिवर्तन के कारण वर्षा का स्वरूप तेजी से बदल रहा है। पहले जहाँ मानसून का समय अपेक्षाकृत निश्चित रहता था, वहीं अब बेमौसमी वर्षा (Unseasonal Rainfall), अत्यधिक वर्षा तथा लंबे समय तक सूखे की स्थिति देखने को मिलती है। यह असंतुलन फल फसलों के लिए गंभीर चुनौती बन गया है। असमय वर्षा विशेष रूप से फूल आने एवं फल बनने के समय अधिक नुकसान पहुँचाती है। उदाहरण के लिए, आम में मंजर निकलने के दौरान वर्षा होने से फूल झड़ जाते हैं तथा फलन कम हो जाता है। इसी प्रकार, अंगूर में पकने के समय वर्षा होने पर फलों में फफूँदजनित रोग तेजी से फैलते हैं। अत्यधिक वर्षा होने पर बागों में जलभराव की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। इससे पौधों की जड़ों को पर्याप्त ऑक्सीजन नहीं मिल पाती तथा जड़ें सड़ने लगती हैं। दूसरी ओर, सूखे की स्थिति में पौधों को पर्याप्त नमी नहीं मिलती, जिससे पौधों की वृद्धि रुक जाती है तथा फल छोटे एवं कमजोर रह जाते हैं। केला एवं पपीता जैसी फसलें जल की कमी के प्रति अत्यधिक संवेदनशील होती हैं। संतरा एवं अनार जैसी फसलों में अनियमित वर्षा के कारण 'फल फटना' (Fruit Cracking) गंभीर समस्या बन जाती है। लंबे सूखे के बाद अचानक अधिक वर्षा होने पर फल तेजी से पानी अवशोषित करते हैं, जिससे उनका छिलका फट जाता है।

ग. तेज हवायें एवं उच्च वायु वेग का प्रभाव

जलवायु परिवर्तन के कारण चक्रवात, आँधी एवं तेज हवाओं की घटनायें बढ़ती जा रही हैं। उच्च वायु वेग (High Wind Velocity) फल फसलों के लिए अत्यंत हानिकारक सिद्ध होता है।

तेज हवाओं के कारण-

- फूल एवं छोटे फल झड़ जाते हैं
- शाखायें टूट जाती हैं
- पौधे गिर जाते हैं
- फलों पर खरोंच एवं चोट लग जाती है

केला जैसी फसलों में तेज हवाओं के कारण पौधे गिर जाते हैं, जिससे भारी उत्पादन हानि होती है। इसी प्रकार, आम एवं लीची में तेज आँधी के कारण फल गिरने (Fruit Drop) की समस्या बढ़ जाती है। समुद्री तटीय क्षेत्रों में आने वाले चक्रवात नारियल, काजू एवं केला बागानों को गंभीर नुकसान पहुँचाते हैं। ओडिशा, आंध्र प्रदेश एवं पश्चिम बंगाल में चक्रवाती तूफानों के कारण बागवानी फसलों को भारी क्षति पहुँचती है।

तेज हवाओं से आम की फसल प्रभावित

घ. कीट एवं रोगों का बढ़ता प्रकोप

जलवायु परिवर्तन के कारण तापमान एवं आर्द्रता में बदलाव कीट एवं रोगों के विकास के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ उत्पन्न करते हैं। परिणामस्वरूप, कई पुराने रोग अधिक तेजी से फैल रहे हैं तथा नयें कीट एवं रोग भी सामने आ रहे हैं। आम की फसल में फल मक्खी एवं पाउडरी मिल्ड्यू रोग का प्रकोप लगातार बढ़ रहा है। केला में पनामा विल्ट रोग तथा अंगूर में डाउनी मिल्ड्यू रोग किसानों के लिए गंभीर समस्या बन चुके हैं। अधिक तापमान एवं आर्द्रता के कारण कीटों का जीवन चक्र तेज हो जाता है, जिससे उनका प्रकोप अधिक बढ़ता है। किसानों को बार-बार कीटनाशकों एवं फफूँदनाशकों का छिड़काव करना पड़ता है, जिससे उत्पादन लागत बढ़ जाती है।

ङ. फल की गुणवत्ता एवं उत्पादकता पर प्रभाव

जलवायु परिवर्तन का प्रभाव केवल उत्पादन तक सीमित नहीं है, बल्कि फलों की गुणवत्ता एवं उत्पादकता पर भी इसका गहरा असर पड़ता है।

तापमान एवं नमी में असंतुलन के कारण

- फलों का आकार छोटा हो जाता है
- रंग एवं चमक कम हो जाती है
- मिठास एवं स्वाद प्रभावित होता है
- भंडारण क्षमता घट जाती है
- पोषण गुणवत्ता कम हो जाती है

उदाहरण के लिए, अत्यधिक गर्मी के कारण अंगूर एवं आम में मिठास कम हो जाती है। लीची अधिक तापमान में जल्दी खराब होने लगती है। फल गिरने (Fruit Drop) की समस्या भी जलवायु परिवर्तन के कारण बढ़ती जा रही है। अत्यधिक गर्मी, तेज हवा, जल तनाव एवं पोषक तत्वों की कमी के कारण पौधे छोटे फलों को गिरा देते हैं, जिससे कुल उत्पादन में भारी कमी आती है। इस प्रकार, जलवायु परिवर्तन सीधे तौर पर फल फसलों की उपज, गुणवत्ता एवं उत्पादकता को प्रभावित कर रहा है।

च. परागण प्रक्रिया एवं मधुमक्खियों पर प्रभाव

फल उत्पादन में मधुमक्खियों एवं अन्य परागण करने वाले कीटों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। ये कीट फूलों के परागकणों को एक फूल से दूसरे फूल तक पहुँचाकर फल बनने की प्रक्रिया को पूर्ण करते हैं। लेकिन जलवायु परिवर्तन के कारण तापमान एवं मौसम में असंतुलन उत्पन्न हो रहा है, जिससे मधुमक्खियों की संख्या एवं सक्रियता प्रभावित हो रही है। अत्यधिक गर्मी, वर्षा एवं तेज हवाओं के कारण मधुमक्खियाँ कम सक्रिय रहती हैं। कई बार फूल आने का समय और मधुमक्खियों की सक्रियता का समय अलग-अलग हो जाता है, जिससे परागण प्रक्रिया प्रभावित होती है। उदाहरण के लिए, सेब एवं बादाम जैसी फसलों में मधुमक्खियों की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण होती है। यदि उचित परागण न हो, तो फलन कम हो जाता है और उत्पादन घट जाता है। इसके अतिरिक्त, कीटनाशकों के अत्यधिक उपयोग के कारण भी मधुमक्खियों की संख्या तेजी से कम हो रही है, जो भविष्य में फल उत्पादन के लिए गंभीर चिंता का विषय है।

प्रमुख फल फसलों पर जलवायु परिवर्तन का प्रभाव

क. आम

आम भारत की सबसे महत्वपूर्ण एवं लोकप्रिय फल फसल है, जिसे 'फलों का राजा' कहा जाता है। भारत विश्व में आम उत्पादन में अग्रणी देशों में शामिल है। परंतु वर्तमान समय में जलवायु परिवर्तन का प्रभाव आम उत्पादन पर स्पष्ट रूप से दिखाई दे रहा है। असमय वर्षा, ओलावृष्टि, अत्यधिक तापमान एवं तेज हवाओं के कारण आम की फसल को भारी नुकसान हो रहा है। आम में मंजर निकलने के समय यदि वर्षा या अधिक आर्द्रता हो जाए, तो मंजर झड़ने लगते हैं तथा फलन प्रभावित होता है। कई बार तेज हवाओं एवं तापमान में अचानक वृद्धि के कारण छोटे फल गिरने की समस्या बढ़ जाती है। उत्तर प्रदेश, बिहार एवं महाराष्ट्र के अनेक आम उत्पादक क्षेत्रों में पिछले कुछ वर्षों में बेमौसमी वर्षा एवं ओलावृष्टि के कारण किसानों को भारी आर्थिक नुकसान उठाना पड़ा है। इसके अतिरिक्त, तापमान एवं आर्द्रता में बदलाव के कारण फल मक्खी एवं पाउडरी मिल्ड्यू जैसे रोगों का प्रकोप भी बढ़ रहा है।

ख. सेब

सेब एक प्रमुख शीतोष्ण फल फसल है, जिसकी खेती मुख्यतः हिमाचल प्रदेश, जम्मू-कश्मीर एवं उत्तराखंड के पर्वतीय क्षेत्रों में की जाती है। सेब उत्पादन के लिए ठंडे मौसम एवं पर्याप्त 'चिलिंग आवर्स' की आवश्यकता होती है। लेकिन बढ़ते तापमान के कारण हिमालयी क्षेत्रों में सर्दियों की अवधि कम होती जा रही है, जिससे चिलिंग आवर्स में कमी आ रही है। इसका सीधा प्रभाव सेब के पुष्पन, फलन एवं उत्पादन पर पड़ रहा है। परिणामस्वरूप, पारंपरिक सेब उत्पादक क्षेत्रों में उत्पादन घट रहा है तथा सेब की खेती अधिक ऊँचाई वाले क्षेत्रों की ओर स्थानांतरित हो रही है। इसके अतिरिक्त, पाला (Frost), असमय वर्षा एवं ओलावृष्टि भी सेब की गुणवत्ता

एवं उत्पादकता को प्रभावित कर रहे हैं।

ग. केला

केला भारत की एक महत्वपूर्ण व्यावसायिक फल फसल है, जो उष्ण एवं आर्द्र जलवायु में अच्छी तरह विकसित होती है। परंतु अत्यधिक गर्मी, सूखा एवं तेज हवाएँ केले की खेती के लिए गंभीर समस्या बनती जा रही हैं। उच्च तापमान के कारण पौधों में जल तनाव बढ़ जाता है, जिससे पौधों की वृद्धि प्रभावित होती है और फल छोटे रह जाते हैं। सूखे की स्थिति में केले की उत्पादकता में भारी गिरावट देखी जाती है। तेज हवाओं एवं चक्रवातों के कारण केले के पौधे गिर जाते हैं, क्योंकि इनके तने अपेक्षाकृत कमजोर होते हैं। दक्षिण भारत एवं तटीय क्षेत्रों में आने वाले चक्रवातों से केले की फसल को अक्सर भारी नुकसान होता है। इसके अतिरिक्त, जलवायु परिवर्तन के कारण पनामा विल्ट एवं सिगाटोका जैसे रोगों का प्रकोप भी बढ़ता जा रहा है, जिससे किसानों की लागत में वृद्धि हो रही है।

घ. अंगूर

अंगूर एक महत्वपूर्ण नगदी फल फसल है, जिसकी खेती मुख्यतः महाराष्ट्र एवं कर्नाटक में की जाती है। अंगूर की गुणवत्ता एवं उत्पादन मौसम पर अत्यधिक निर्भर करते हैं। असमय वर्षा एवं अधिक आर्द्रता के कारण अंगूर में फफूंदजनित रोगों, जैसे डाउनी मिल्ड्यू एवं पाउडरी मिल्ड्यू का प्रकोप तेजी से बढ़ता है। विशेष रूप से फल पकने के समय वर्षा होने पर फलों की गुणवत्ता प्रभावित होती है तथा फल सड़ने लगते हैं। अत्यधिक तापमान के कारण अंगूर में मिठास कम हो जाती है तथा फलों का रंग एवं आकार प्रभावित होता है। इसके अतिरिक्त, तेज हवाओं एवं गर्मी के कारण फल गिरने की समस्या भी बढ़ जाती है। परिणामस्वरूप, किसानों को उत्पादन एवं बाजार मूल्य दोनों में नुकसान उठाना पड़ता है।

किसानों के सामने बढ़ती चुनौतियाँ

जलवायु परिवर्तन के कारण फल उत्पादक किसानों को अनेक आर्थिक, सामाजिक एवं तकनीकी समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। बदलते मौसम के कारण खेती की पारंपरिक प्रणाली प्रभावित हो रही है तथा किसानों के लिए उत्पादन बनाए रखना कठिन होता जा रहा है।

प्रमुख चुनौतियाँ निम्नलिखित हैं-

- उत्पादन एवं उत्पादकता में कमी
- फल की गुणवत्ता में गिरावट
- कीट एवं रोग नियंत्रण पर अधिक खर्च
- सिंचाई एवं पोषक प्रबंधन की लागत में वृद्धि
- प्राकृतिक आपदाओं, जैसे बाढ़, सूखा एवं ओलावृष्टि से बागों का नुकसान
- बाजार में उचित मूल्य न मिलना
- भंडारण एवं परिवहन संबंधी कठिनाइयाँ

छोटे एवं सीमांत किसान इन समस्याओं से सबसे अधिक प्रभावित हो रहे हैं, क्योंकि उनके पास सीमित संसाधन एवं तकनीकी सुविधायें उपलब्ध होती हैं। कई बार प्राकृतिक आपदाओं के कारण पूरे बाग नष्ट हो जाते हैं, जिससे किसानों को भारी आर्थिक संकट का सामना करना पड़ता है।

समाधान एवं बचाव के उपाय

जलवायु परिवर्तन से निजात पाने के निम्न लिखित उपायों को अपनाकर समाधान किया जा सकता हैः

क. जल संरक्षण तकनीकों का उपयोग

जलवायु परिवर्तन के कारण जल संकट की समस्या बढ़ती जा रही है। इसलिए ड्रिप सिंचाई, स्प्रिंकलर सिंचाई, मल्चिंग एवं वर्षा जल संचयन जैसी तकनीकों को अपनाना आवश्यक है। इन तकनीकों से पानी की बचत होती है तथा पौधों को आवश्यक नमी निरंतर मिलती रहती है।

ख. जलवायु सहनशील किस्मों का विकास एवं उपयोग

ऐसी फल फसल किस्मों का विकास एवं उपयोग आवश्यक है, जो सूखा, अत्यधिक तापमान, रोग एवं कीटों को सहन करने में सक्षम हों। वैज्ञानिक संस्थानों एवं कृषि विश्वविद्यालयों को इस दिशा में निरंतर कार्य करना चाहिए।

ग. मौसम आधारित कृषि सलाह

मौसम पूर्वानुमान के आधार पर कृषि कार्य करने से नुकसान को काफी हद तक कम किया जा सकता है। किसानों को समय-समय पर मौसम संबंधी जानकारी एवं वैज्ञानिक सलाह उपलब्ध करानी चाहिए, ताकि वे सिंचाई, छिड़काव एवं अन्य कृषि कार्य उचित समय पर कर सकें।

घ. समेकित कीट एवं रोग प्रबंधन (IPM)

कीट एवं रोग नियंत्रण के लिए केवल रासायनिक उपायों पर निर्भर रहने के बजाय जैविक एवं वैज्ञानिक उपायों का संतुलित उपयोग आवश्यक है। इससे उत्पादन लागत कम होगी तथा पर्यावरण संरक्षण में भी सहायता मिलेगी।

ङ. वृक्षारोपण एवं हरित आवरण बढ़ाना

अधिक से अधिक वृक्षारोपण एवं हरित आवरण बढ़ाने से पर्यावरण संतुलन बनाए रखने में सहायता मिलती है। पेड़ कार्बन डाइऑक्साइड को अवशोषित कर वातावरण को शुद्ध बनाते हैं तथा तापमान नियंत्रण में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

च. जलवायु-स्मार्ट बागवानी तकनीकों को अपनाना

जलवायु परिवर्तन के बढ़ते प्रभावों को देखते हुए शेड नेट, एंटी-हेल नेट, विंडब्रेक, मल्चिंग तथा संरक्षित खेती जैसी जलवायु-स्मार्ट बागवानी तकनीकों का उपयोग अत्यंत आवश्यक हो गया है। ये तकनीकें अत्यधिक तापमान, तेज हवाओं, ओलावृष्टि, सूखा एवं नमी की कमी से फल फसलों की सुरक्षा करती हैं। साथ ही, मृदा की नमी संरक्षण, पौधों की बेहतर वृद्धि, उच्च गुणवत्ता वाले फल उत्पादन तथा उत्पादकता बढ़ाने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं।

निष्कर्ष

जलवायु परिवर्तन आज फल फसलों एवं किसानों दोनों के लिए गंभीर चुनौती बन चुका है। असमय वर्षा, तापमान में वृद्धि, सूखा, ओलावृष्टि, तेज हवायें तथा कीट एवं रोगों का बढ़ता प्रकोप फल उत्पादन, गुणवत्ता एवं उत्पादकता को निरंतर प्रभावित कर रहा है। बदलते मौसम के कारण फल फसलों में फल गिरना, फूल झड़ना, रोगों का प्रकोप बढ़ना तथा उत्पादन लागत में वृद्धि जैसी समस्यायें तेजी से बढ़ रही हैं। इसका सीधा प्रभाव किसानों की आय एवं देश की खाद्य तथा पोषण सुरक्षा पर पड़ रहा है। विशेष रूप से छोटे एवं सीमांत किसान जलवायु परिवर्तन के दुष्प्रभावों से अधिक प्रभावित हो रहे हैं, क्योंकि उनके पास सीमित संसाधन एवं आधुनिक तकनीकों की कमी होती है। यदि समय रहते वैज्ञानिक एवं जलवायु-स्मार्ट बागवानी तकनीकों को नहीं अपनाया गया, तो भविष्य में फल उत्पादन एवं किसानों की आर्थिक स्थिति पर गंभीर नकारात्मक प्रभाव पड़ सकता है। अतः आवश्यक है कि किसान, वैज्ञानिक, कृषि विश्वविद्यालय एवं सरकार मिलकर टिकाऊ एवं पर्यावरण-अनुकूल बागवानी पद्धतियों को बढ़ावा दें। ड्रिप सिंचाई, मल्चिंग, वर्षा जल संचयन, जलवायु सहनशील किस्मों का विकास, समेकित कीट एवं रोग प्रबंधन तथा मौसम आधारित कृषि सलाह जैसी तकनीकों को व्यापक स्तर पर अपनाने की आवश्यकता है।

इसके साथ ही, वृक्षारोपण, प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण तथा पर्यावरण संतुलन बनायें रखने की दिशा में सामूहिक प्रयास किए जाने चाहिए। यही प्रयास भविष्य में सुरक्षित, टिकाऊ एवं समृद्ध बागवानी तथा किसानों की बेहतर आजीविका का आधार सिद्ध होंगे।

❖❖

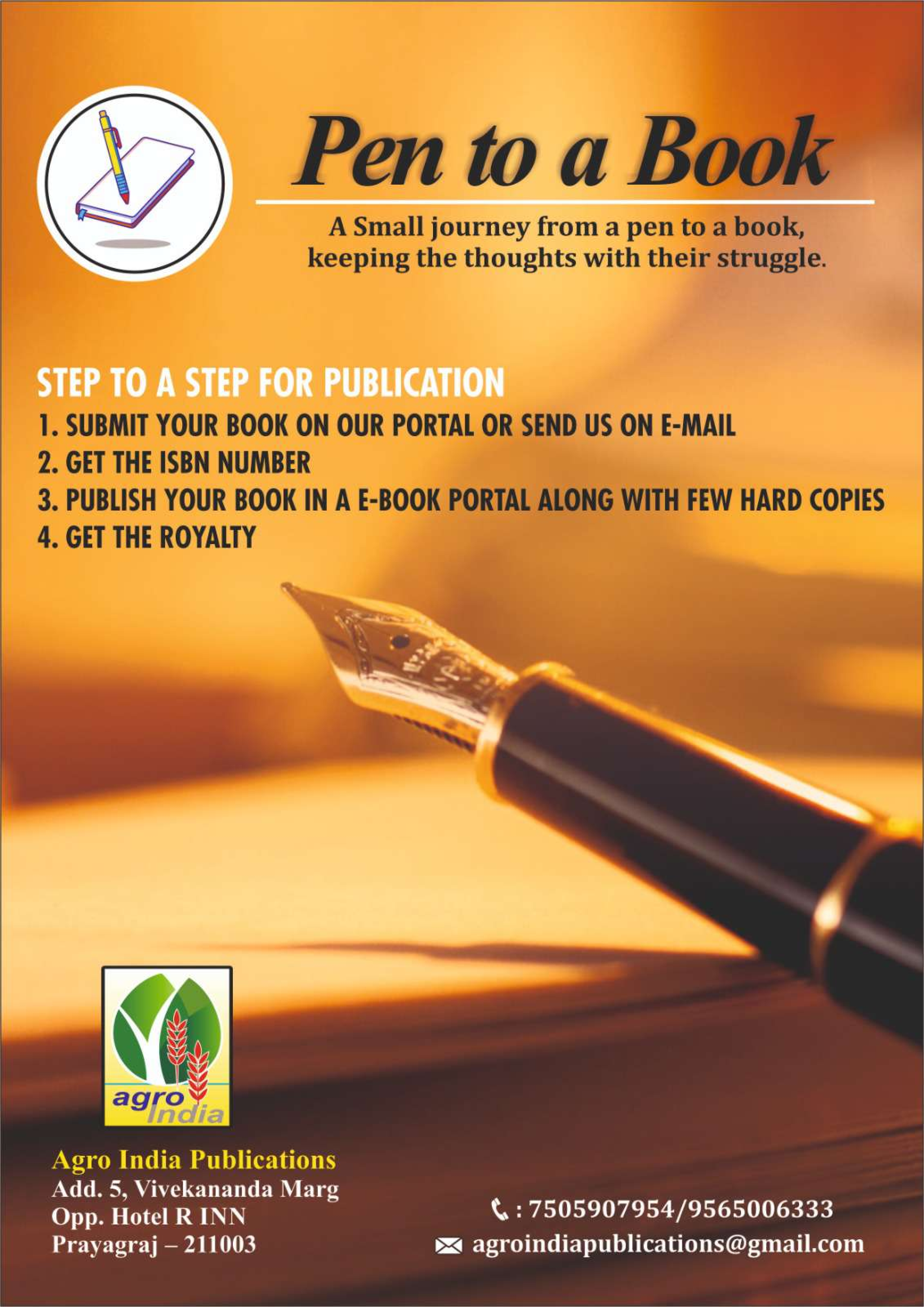
Pen to a Book
A Small journey from a pen to a book,
keeping the thoughts with their struggle.
STEP TO A STEP FOR PUBLICATION
1. SUBMIT YOUR BOOK ON OUR PORTAL OR SEND US ON E-MAIL
2. GET THE ISBN NUMBER
3. PUBLISH YOUR BOOK IN A E-BOOK PORTAL ALONG WITH FEW HARD COPIES
4. GET THE ROYALTY
agro India
Agro India Publications
Add. 5, Vivekananda Marg
Opp. Hotel R INN
Prayagraj – 211003
: 7505907954/9565006333
agroindiapublications@gmail.com

ISSN No. 2583-3316

सब्जियों में समन्वित कीट प्रबंधन

फूलसिंह मरकाम[1]*, प्रमोद कुमार नेताम[2] एवं पीयूष कांत नेताम[3]

[1]उद्यानिकी विज्ञान विभाग, [2]कृषि प्रसार विज्ञान विभाग, [3]कीट विज्ञान विज्ञान विभाग

रामप्रसाद पोटाई कृषि महाविद्यालय एवं अनुसंधान केन्द्र, कांकेर, छत्तीसगढ़

पत्राचारकर्ता: markamphoolsingh@gmail.com

परिचय

समन्वित कीट प्रबंधन के अंतर्गत कीट नियंत्रण के सरल और प्रभावी तरीको का इस प्रकार समावेश करते हैं कि कीट नियंत्रण प्रभावी हो, सब्जी उत्पादक किसान और उपभोक्ता दोनों लाभान्वित हों और वातावरण भी सुरक्षित रहे। इसके अन्तर्गत सस्य, भौतिक, यांत्रिक क्रियाओं, जैविक नियंत्रण एवं रासायनिक दवाओं के समुचित चुनाव एवं उनके समावेष द्वारा एकीकृत कीट प्रबधंन किया जाता है, जिससे मित्र कीटों की संख्या एवं वातावरण की स्वच्छता पर बुरा प्रभाव नहीं पड़ता। रासायनिक कीटनाशियों के अत्यधिक प्रयोग से सब्जियों में हानिकारक दवाओं के अवशेष अधिक मात्रा में पाये जाने के कारण मनुष्य के स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है, जिससे सब्जियों में समन्वित कीट प्रबंधन के तरीकों को अपनाने की आवश्यकता है।

समन्वित कीट प्रबंधन के तरीकों की सफलता मुख्यतः हानिकारक कीट एवं मित्र कीटों की निगरानी के आधार पर कीट प्रबंधन के तरीकों को उचित समय पर प्रयोग करने के ऊपर निर्भर है। समन्वित कीट प्रबंधन के तरीकों का सक्षिप्त विवरण निम्नानुसार हैः

समन्वित कीट प्रबंधन में सस्य क्रियाओं का महत्व

कीट प्रबंधन में इस घटक के उत्पाद प्रयोग से कोई अतिरिक्त व्यय नहीं होता है एवं यह पर्यावरण को सुरक्षित व अधिक टिकाऊ बनाता है। इसमें सस्य क्रियाओं का चयन ऐसा हो जिससे मित्र कीटों पर अनुकुल प्रभाव पडे। इसके अंतर्गत फसल-चक्र व अंतः फसलों का सही चुनाव, सहीं किस्मों का चुनाव, बुवाई एवं रोपाई के समय में परिवर्तन आदि शामिल है, जिनका संक्षिप्त विवरण निम्नानुसार हैः

अवरोधी एवं सहनशील किस्मों का चयन

किसी क्षेत्र के नाशीकीट एवं मित्र कीटों की विविधता एवं संघनता के आधार पर अवरोधी अथवा सहनशील किस्मों का चुनाव एकीकृत कीट प्रबंधन की महत्वपूर्ण कड़ी हैं। इस आधार पर चयनित किस्मों में अपेक्षाकृत कम कीट लगते है एवं रासायनिक दवाओं की खपत में भी कमी आ जाती है। यह विधि सबसे सरल, सस्ती और दुष्प्रभाव रहित है।

फसल चक्र

खेत में सब्जियों को लगाते समय उचित फसल-चक्र अपनाना चाहिए अर्थात् एक ही कुल के सब्जी को उसी खेत में दुबारा न लगायें। इस विधि से कीटों के सतत् जीवन चक्र को अपेक्षाकृत अवरूद्ध किया जा सकता है।

बुवाई व पौध रोपण का समय

कीड़ों के प्रति फसल की नाज़ुक अवस्था को ध्यान में रखकर फसल की बुवाई तथा रोपाई के समय में परिवर्तन करके अत्यधिक नुकसान से बचा जा सकता है। सब्जियों की बुवाई/रोपाई के समय में परिवर्तन कर लाल भृंग कीट, फल मक्खी, तना एवं फल छेदक कीट के प्रकोप को कम किया जा सकता है। कद्दूवर्गीय सब्जियों की बुवाई नवम्बर में करने से लाल भृंग कीट के आक्रमण से बचा जा सकता

है। जबकि करेला में अक्टूबर से पहले फूलने वाली प्रजातियों का चयन करने सें फलबेधक कीट के प्रकोप को कम किया जा सकता है। अतः पौधों की बुवाई/रोपाई ऐसे समय में करे, जब पौधें की नाजुक अवस्थयें एवं नाशीकीट की निष्क्रिय अवस्था समानान्तर हो।

गर्मी की जुताई

ग्रीष्मकाल में गहरी जुताई करके क़ीड़ों को नष्ट करना कीट नियंत्रण की एक प्रभावी विधि है। कटाई के उपरान्त खेत की गहरी जुताई करके फल मक्खी, कद्दू का लाल भृंग और कटुआ कीट के जीवन चक्र को नष्ट कर उनकी सक्रियता को समाप्त किया जा सकता है।

कीड़ों को आकर्षित करने वाली दूसरी फसले

कुछ फसल को कीट मुख्य फसल की अपेक्षा अधिक पसंद करते है। इन फसलों को मुख्य फसल के साथ फसल-जाल के तौर पर लगाया जाता है, जिसमें कीड़े अपेक्षाकृत ज्यादा लगते है और उन्ही पर उनका नियंत्रण कर दिया जाता है ताकि मुख्य फसल हानिकारक कीटों से बच जाये। आकर्षित करने वाली फसलों को मुख्य में लगाकर बिना किसी रसायन का छिड़काव किये प्रमुख फसल को आसानी से कम लागत में उगाया जा सकता है। पत्तागोभी और फूल गोभी में हरी सूँडी (हीरक पृष्ठ कीट) एवं पर्ण जालक कीट के नियंत्रण हेतु सरसों को फसल-जाल के रूप में प्रयोग करके, गोभीवर्गीय फसल को उपरोक्त कीटों के प्रकोप से बचाया जा सकता है। इसी प्रकार से टमाटर में लगने वाली फल छेदक कीट की रोकथाम हेतु टमाटर की फसल के किनारे-किनारे या प्रत्येक 14 लाइन टमाटर के बाद दो लाइन गेंदा को लगाने से फल छेदक कीट तथा पर्ण सुरंगक कीट द्वारा फसल को होने वाले नुकसान से बचाया जा सकता है।

यांत्रिकी नियंत्रण

कुछ कीट, जो खुली आँख से साफ दिखाई दें और आसानी से पकडे ज़ा सकते हो उनको पकड़कर खत्म कर देना चाहिए। कद्दूवर्गीय सब्जियों में लाल भृंग कीट को इस विधि द्वारा आसानी से नष्ट किया जा सकता है। प्रकाश प्रपंच का उपयोग भी कर सकते हैं।

व्यवहारिक नियंत्रण

इस विधि द्वारा प्रौढ़ कीट को भ्रमित किया जाता है। सब्जियों में मुख्य रूप् से बैगन का तना एवं फल बेधक, तम्बाकू की सूंडी, टमाटर का फल बेधक,एवं फल मक्खी को फेरोमेन टैड्रप द्वारा फंसाकर प्रौढ़ कीट की अत्यधिक संख्या को कम किया जाता है।

सब्जियों में जैविक नियंत्रण

एकीकृत कीट प्रबंधन के समस्त घटकों में जैविक नियंत्रण सबसे महत्वपूर्ण हैं। किसी भी परिस्थिति में मित्र कीट एवं अन्य सूक्ष्मजीव हानिकारक कीट की संख्या को प्राकृतिक रूप से सीमित रखते हैं। जैविक नियंत्रण से इन्ही कारकों का प्रभावी ढ़ग से एकीकृत कीट प्रबंधन में प्रयोग होता है एवं मित्र कीटों को सुरक्षित रखने का प्रयास किया जाता है।

बहुत सारे मित्र कीट जैसे-परभक्षी/परजीवी कीट प्राकृतिक रूप में पाए जाते है, जो हानिकारक नाशीकीट के विभिन्न अवस्थओं को क्षति पहुँचाते है। एक हेक्टेयर टमाटर की फसल को फल छेदक कीट से रोकथाम हेतु 2,50,000 ट्राइकोग्रामा परजीवी कीट का प्रयोग किया जाता है। इसी प्रकार क्राइसोपरला कारनिया नामक परभक्षी कीट, जो सफेद मक्खी, हरा फुदका माँहू आदि का भक्षण करते है, को 50,000 प्रति हेक्टेयर की दर से 10 दिन के अंतराल पर तीन बार खेत में छोड़ने पर उपरोक्त कीटों से फसल को सुरक्षित रखा जा सकता है। मित्र कीटों को प्रयोगशालाओं में अधिक से अधिक उत्पादन करके आवश्यकतानुसार फसलों पर छोड़कर विषैले रसायनों के उपयोग में कमी लायी जा सकती है।

सूक्ष्म जीव द्वारा फसलों की सुरक्षा

सूक्ष्म जीव कीटनाशियों के अंन्तर्गत जीवाणु, कवक और विषाणु का प्रयोग करके हानिकारक कीड़ों में रोग उत्पन्न कर दिया जाता हैं। यह रोग हानिकारक कीड़ों में महामारी की तरह फैलता है और कीड़े मर जाते है। यह कारक रासायनिक दवाओं से सस्ता होता है। इनके प्रयोग करने की विधि आसान है। इस विधि द्वारा कुछ कीटों की रोकथाम की जा सकती है। गोभी का हीरक पृष्ठ कीट, भिण्डी का तना एवं फल छेदक कीट, टमाटर का फलबेधक कीट का नियंत्रण के लिए एच.एन.पी.वी और एस.एन.पी.वी का 250 LE सूंडी समतुल्य घोल का दोपहर के बाद छिडकाव करना विशेष लाभप्रद होता है।

रसायनों का सुरक्षित चयन

रसायनों का अननियमित और अत्यधिक प्रयोग करने से कीटों में प्रतिरोधी क्षमता का विकास होता है और वातावण में हानिकारक रासायनिक अवशेष की वृद्धि होती है,जिससे मनुष्य के स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है। एकीकृत कीट

ISSN No. 2583-3316

प्रबंधन में अगर दूसरे कारकों के साथ सही संतुलन बनाकर सुरक्षित रसायनों की सही मात्रा एवं अंतराल में छिड़काव हो तो कीटनाशी रसायन बहुत प्रभावी होते है। विभिन्न कीटनाशियों का अलग-अलग प्रतीक्षाकाल होता हैं। दवा छिड़कने के बाद प्रतीक्षाकाल के बाद तुड़ाई करने से रासायनिक अवयवों के अवशेष नहीं रहते है। नीम से निर्मित वानस्पतिक रसायन का प्रयोग करके हरा फुदका, माहों और पर्ण सुरंगक कीटों का नियत्रंण आसानी से किया जा सकता है।

सब्जियों में कीटनाशकों का उपयोग

सब्जियों में कीट नियंत्रण के लिए कीटशनाकों का उपयोग सावधानिपूर्वक तथा कम से कम करना चाहिए। अधिकतर कृषिगत उपायों को अपनाना चाहिए। जैसे - कीटों को हाथ/जाल से पकड़कर नष्ट करना, पौधों के कीटग्रसित भागों तथा फलों को ताड़कर नष्ट करना, अवशेषों को जलाना, सब्जियों की बोने की तिथि में बदलाव, फसल-चक्र का उपयोग, कीट प्रतिरोधी जातियों का चुनाव आदि। सबसे अन्त में जरूरत पड़ने पर कीटनाशकों का उपयोग करें। सब्जियों में कीटनाशकों का उपयोग करते समय निम्नलिखित सावधनियाँ रखनी चाहिए।

क. सब्जियों की तुड़ाई करने के बाद ही कीटनाशको का छिड़काव/भुरकाव करें तथा खेतों में बोर्ड लगा दें ''सावधन कीटनाशक का उपयोग किया गया है''।

ख. कीटनाशकों के छिड़काव एवं भुरकाव के बाद लगभग एक सप्ताह तक सब्जियों की उपयोग खाने के लिए न करें।

ग. सिर्फ अच्छे निर्माताओं के पैकबंद कीटनाशक ही खरीदे।

घ. कीटनाशक के पैकेट/बोतल में लिखे हुये निर्देशों का पालन करें।

ङ. सब्जियों को हमशा अच्छी तरह धोकर, छीलकर तथा उबालकर खाना चाहिए।

च. हमेशा सिफारिश किये गये कीटनाशकों की अनुशंसित मात्रा का ही प्रयोग करें।

ञ. सब्जियों में कीटनियंत्रण के लिए ऐसे कीटनाशकों का चुनाव करना चाहिए, जिनका प्रभाव कम समय तक रहता हैं। जैसेः- कार्बेरिल, क्लोरपायरीफास, डायक्लोरवास, डायमिथोएट आदि।

ट. एक हेक्टेयर क्षेत्र में कीटनाशक के छिड़काव के लिये कम से कम 600 लीटर पानी का उपयोग करें।

निष्कर्ष

समन्वित कीट प्रबंधन के लिए अपनाए जाने वाले भौतिक, यान्त्रिक, कृषिगत एवं रासायनिक विधियों के संतुलित प्रयोग से कीटों की स्थायी नियंत्रण की जा सकती है। इससे सिर्फ कीटों की स्थायी नियंत्रण ही नहीं होती, बल्कि लंबे समय तक पर्यावरण और मानव स्वास्थ्य दोनो सुरक्षित रहते हैं। एकीकृत कीट प्रबंधन से भूमि खेती के लिए टिकाऊ और लाभकारी बनी रहती है।

❖❖

ISSN No. 2583-3316

सब्जियों के पारिस्थितिकीय तन्त्र के विश्लेषण पर आधारित पौध स्वास्थ्य प्रबन्धन

चंचल सिंह[1]*, भूपेन्द्र कुमार सिंह[2], मनीष कुमार सिंह[3] एवं अजीत सिंह[4]

[1]पौध सुरक्षा विभाग, [2]कीट विज्ञान विभाग, [3एवं4]सब्जी विज्ञान विभाग
बाँदा कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, बाँदा, उत्तर प्रदेश

पत्राचारकर्ता: chanchalsingh9@gmail.com

परिचय

विश्व के फल एवं सब्जी उत्पादक देशों में भारत का दूसरा स्थान है, जो लगभग 107.24 मिलियन टन फल और 204.84 मिलयन टन सब्जी का उत्पादन करता है। अपना देश, खाद्यान्न उत्पादन के क्षेत्र में आत्म-निर्भरता और एक अच्छी स्थिरिता प्राप्त कर चुका है। यह हमारे देश की जनसंख्या को स्वास्थ्य सुरक्षा प्रदान करने हेतु संतुलित आहार के माध्यम से पोषण आपूर्ति की आवश्यकता को जन्म देती है।

सब्जियाँ, हमारे संतुलित आहार के एक अति महत्वपूर्ण अवयव के रूप में स्थापित है। सब्जियों के उत्पादन में आने वाले कुछ व्यवधान इस प्रकार हैः 1) गुणवत्तायुक्त बीजों की अनुपलब्धता, 2) अपेक्षाकृत अधिक कीट-व्याधियों का प्रकोप तथा खरपतवारों से फसल के पौधों की प्रतिस्पर्धा के कारण उत्पादन लागत की अधिकता इत्यादि। उपरोक्त सभी कारकों में कीट-व्याधियों का संक्रमण एक प्रमुख व्यवधान के रूप में उभरकर सामने आता है। कीट-व्याधियों के द्वारा सब्जी की फसलों को बहुत अधिक क्षति पहुँचाई जाती है, जिसका आकलन किया जाना बहुत कठिन लक्ष्य प्रतित होता है। एक आकलन के अनुसार, सब्जियों में लगने वाले कीट-व्याधिओं के प्रकोप से फसलों के उत्पादन में 25-45 प्रतिशत की क्षति देखा गया हैं।

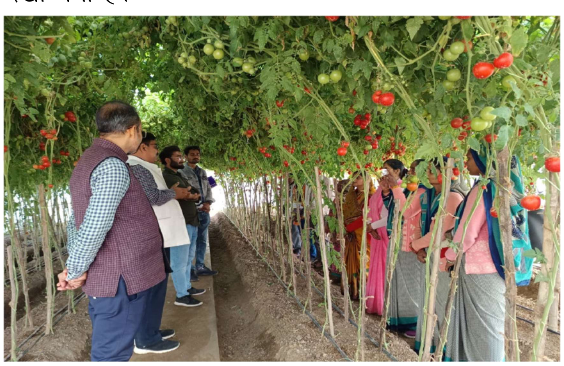

टमाटर की संरक्षित खेती

सब्जियों में, टमाटर को फल भेदक (*Helicoverpa armigera*), सरपेंटाइन लीफ माइनर (*Liriomyza trifolii*), सफेद मक्खी (*Bemisia tabaci*) और थ्रिप्स (*Thrips tabaci*); बैगन को प्ररोह एवं फल भेदक (*Leucinodes orbonalis*), हड्डा बीटल (*Epilachna viginctioctopunctata*) और माहू (*Aphis gossypii*); मिर्च को थ्रिप्स (*Scirtothrips dorsalis*), माइट (*Polyphagotarsonemus latus*) और फल भेदक (*Helicoverpa armigera*); जबकि आलू को कटवर्म (*Agrotis ipsilon*), सफेट लट (*Holotrichia longipennis*), ट्यूबर मोथ (*Pthorimea opercul-lela*), माहू (*Myzus persicae*), होपर (*Empoasca fabae*) और सफेद मक्खी (*Bemisia tabaci*); गोभीवर्गीय को कैबेज बटरफ्लाई (*Pieris brassicae*), हीरक पृष्ट मोथ (*Plutella xylostella*) और माहू (*Brevicoryne brassicae*) तथा कद्दूवर्गीय सब्जी के पौधों को लाल कीट (*Aulacophora foveicollis*), फल मक्खी (*Bactro-cera cucurbitae*) और अन्य कीट आर्थिक क्षति पहुँचाने की क्षमता रखते है। वर्णित कीटों के अतिरिक्त इन सब्जियों में अनेकों व्याधियों का भी संक्रमण होता है, जिनके प्रमुख कारक कवक, जीवाणु या विषाणु हो सकते है। इनके साथ ही साथ हम फसलों का खरपतवारों के साथ होने वाली प्रतिस्पर्धा को नजर अंदाज नहीं कर सकते हैं।

कद्दू वर्गीय सब्जियों का लाल कीट

आज भी हमारे देश में किसान भाई कीट-व्याधियों तथा खरपतवारों के प्रबन्धन हेतु संश्लेषित (Synthetic) जीवनाशियों (Pesticides) का उपयोग करते हैं। संश्लेषित जीवनाशियों के अत्यधिक उपयोग के कारण कुछ जटिल समस्यायें जैसे- हानिकारक कीट-व्याधियों के प्राकृतिक शत्रुओं की संख्या में कमी, गैर-लक्षित जीवों के जीवन चक्र पर दुष्प्रभाव, सब्जियों पर उपयोग किये गये जीवनाशियों का अवशेष, उपयोग किये गये जीवनाशियों के कीट एवं व्याधि कारकों में सहनशीलता का विकास, असंतुलित पर्यावरणीय तन्त्र इत्यादि सामने आ रहीं है। हमारे जागरूक प्रगतिशील कृषक सब्जियों के पारिस्थितिकीय तन्त्र के विश्लेषण पर आधारित पौध स्वास्थ्य प्रबन्धन को अपनाकर, संश्लेषित जीवनाशियों के अधिकाधिक उपयोग से होने वाले उक्त वर्णित दुष्प्रभाव से अपने जन समुदाय को बचा सकते है, साथ ही उन्हे स्वस्थ एवं संतुलित भोज्य सामग्री उपलब्ध कराने में अपना योगदान दे सकते है। सब्जियों के पारिस्थितिकीय तन्त्र में इन सभी जैविक कारकों का अलग-अलग प्रबन्धन किसी भी रूप में लाभप्रद प्रतित नहीं हो सकता है। अतः इन सभी कारकों का सामूहिक रूप से पारिस्थितिकीय तन्त्र के विश्लेषण पर आधारित एकीकृत पौध स्वास्थ्य प्रबन्धन लाभप्रद साबित हो सकता है।

पारिस्थितिकीय तन्त्र के विश्लेषण पर आधारित पौध स्वास्थ्य प्रबन्धन

जिस प्रकार कृषि के अन्तर्गत सभी फसलों का अपना एक पारिस्थितिकीय तन्त्र होता है, उसी प्रकार उद्यान फसलों यथा फल, सब्जी, फूल, मसाले इत्यादि का भी अपना-अपना पारिस्थितिकीय तन्त्र होता है। जिनके दो प्रमुख कारक होते हैं: 1) अजैविक एवं 2) जैविक। अजैविक कारकों में तापमान, नमी, सापेक्षिक आर्द्रता, वर्षा, हवा की गति इत्यादि आते है, जो हमारे नियन्त्रण में नहीं रहते है। वही जैविक कारकों जैसे- फसल व खरपतवारों के पौध, हानिकारक व लाभप्रद कीट, सूक्ष्मजीव इत्यादि के विशेष प्रबन्धन से हम अपने फसल के पौधों का स्वास्थ्य वेहतर बनाये रख सकते है, जिससे हम अच्छा आय प्राप्त करने में सफल हो सकते है। खाद्य एवं कृषि संगठन के विशेषज्ञों द्वारा पौधों का स्वास्थ्य अच्छा बनाए रखने के लिए हानिकारक जीवों (नाशीजीव) के समेकित प्रबन्धन को परिभाषित किया गया है, जिनके अनुसार, समेकित नाशीजीव प्रबन्धन का अर्थ है कि नाशीजीवों के प्रबन्धन की सभी उपलब्ध तकनीकों पर सावधानीपूर्वक विचार करना और उसके बाद ऐसे उचित उपायों को अपनाना, जो इनकी संख्या को बढ़ने से रोकें। साथ ही, यह जीवनाशियों और अन्य उपायों के उपयोग को ऐसे स्तर तक सीमित रखता है, जो आर्थिक रूप से उचित हों और जिनसे मानव स्वास्थ्य तथा पर्यावरण को होने वाले जोखिम कम से कम हों। समेकित नाशीजीव प्रबन्धन, कृषि-पारिस्थितिकीय तन्त्र में न्यूनतम सम्भव व्यवधान के साथ एक स्वस्थ फसल उगाने के उपायों पर बल देता है और नाशीजीवों के प्राकृतिक नियन्त्रण तन्त्रों को बढ़ावा देता है। पौध स्वास्थ्य प्रबन्धन की इस विधा में, फसल बढ़वार की प्रत्येक अवस्था पर इनकी गतिविधियाँ सम्पादित होतीं है। साथ ही साथ हानिकारक एवं लाभप्रद जीवों के संख्या का आंकलन और विश्लेषण के आधार पर पौध स्वास्थ्य प्रबन्धन की गतिविधियाँ सम्पादित करने का निर्णय लिया जाता है।

बुवाई से पहले

सब्जियों में मृदा जनित हानिकारक कवक, जीवाणु, विषाणु, सूत्रकृमि, कीट एवं खरपतवारों की विभिन्न अवस्थाओं को नष्ट करने के लिए अपनाई जाने वाली प्रमुख गतिविधियाँ इस प्रकार है:-

क. खेत की ग्रीष्मकालीन गहरी जुताई करना चाहिए।

ख. यदि सम्भव हो तो खेत की हल्की सिचाई करके, 0.45 मिली मीटर मोटी पॉलीथिन की चादर से 20-25 दिनों के लिए ढक देना चाहिए।

ग. लगभग 100 किलोग्राम प्रति एकड़ की दर से नीम की खली का अनुप्रयोग करना चाहिए, जिससे फसल में विभिन्न कीट-व्याधियों के प्रकोप को कम किया जा सके।

घ. सूत्रकृमि के प्रकोप को कम करने के लिए गेंदा को अन्तःवर्तीय फसल के रूप में उगाना चाहिए।

ङ. कम से कम तीन से चार वर्ष का फसल चक्र अपनाने से बहुत से व्यवधान स्वतः कम हो जाते है। फसल चक्र बनाने के लिए अलग-अलग कुल की सब्जियों का चयन

करना हितकर रहता है।

च. सब्जियों के उन प्रजातियों का हमेशा चुनाव करें, जो विभिन्न कीट एवं व्याधि कारकों के संक्रमण के प्रति सहनशील हो तथा खरपतवारों के प्रतिस्पर्धा का इनके स्वास्थ्य पर कम से कम असर परिलक्षित हो।

छ. टमाटर की प्रजाति - पूसा रूबी, रूपाली, रोमा,अर्का रक्षक इत्यादि विभिन्न कीट या व्याधि कारकों के संक्रमण के प्रति सहनशीलता प्रदर्शित करतीं हैं।

ज. फसलों में विविधता बढ़ाने के उद्देश्य से मिश्रित या अन्तःवर्तीय खेती को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। कुछ शोध के आकलन बताते है कि गेंदा को टमाटर (10:1) तथा सरसों को गोभी वर्गीय सब्जियों (10:1) के साथ अन्तःवर्तीय फसल के रूप में लगाया जाय तो क्रमशः टमाटर के फल भेदक तथा गोभी वर्गीय सब्जियों के हीरक पृष्ट मोथ का प्रकोप कम होता है।

बुवाई के समय

क. फसलों के बीज को मृदा जनित हानिकारक कवकों से बचाव के लिए ट्राईकोडर्मा (*Trichoderma* sp.) @ 5.0 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज की दर से उपचारित करना चाहिए।

ख. जबकि हानिकारक कीटों से बचाव के लिए एमिडाक्लोप्रिड (Imidachloprid) 48 एफ. एस. @ 1.0 – 2.0 मिली लीटर प्रति 2 किलोग्राम बीज की दर से शोधित करना हितकर होगा।

ग. सफेद मक्खी एवं पीत शीरा मोसैक व्याधि के प्रबन्धन के लिए सहनशील प्रजाति का चुनाव करें।

घ. सम्भव हो तो पीपरमेंट (मेंथा)/ मक्का/ ज्वार/ बाजरा को अन्तःवर्तीय फसल के रूप में उगायें।

ङ. कीटों के प्राकृतिक शत्रुओं को आकर्षित करने के लिए पीला, सफेद एवं बैंगनी पुष्प देने वाले पौधों को लगाना चाहिए।

वानस्पतिक वृद्धि

क. फसल बढ़वार के प्रारम्भिक 30-40 दिनों तक प्रक्षेत्र को खरपतवारों से मुक्त रखना चाहिए।

ख. जिसके लिए अवश्यकतानुसार बुवाई के 25-30 दिनों तथा 40-45 दिनों बाद 1-2 बार यान्त्रिक रूप से निकाई-गुड़ाई करके पौध के जड़ के पास मिट्टी लगा देना काफी लाभप्रद रहता है।

ग. यदि सम्भव हो तो कम घानत्व वाली काले रंग की 30 माइक्रोमीटर मोटी पालीथिन (LDPE) की चादर को पलवार (Mulching) के रूप में उपयोग करके, खरपतवारों की बढ़वार को काफी हद तक रोका जा सकता है।

घ. बैंग़न व भिण्डी के प्ररोह एवं फली भेदक तथा टमाटर के फल भेदक कीट के निगरानी लिये 5 फेरोमोन पाश (Pheromone Trap) प्रति हेक्टेयर की दर से स्थापित करें।

ङ. जब पाश में कीट आने लगे तब उपलब्धता के अनुरूप अण्ड परजीवी जैसे-ट्राइकोग्रैमा चिलोनिस (*Trichogramma chilonis*) के 40,000 अण्डों को प्रति एकड़ की दर से उपयोग करना चाहिए।

च. साथ ही साथ ग्रसित प्ररोह एवं फलों/फलियों को इकट्ठा करके नष्ट करते रहना चाहिए।

छ. यदि उपरोक्त क्रिया कलापों द्वारा वर्णित कीट की संख्या कम नहीं हो, तब क्लोरंट्रानिलिप्रोले (Chlorantraniliprole) 15 एस. सी. @ 1.0 मिली लीटर प्रति 4 लीटर पानी या एमामेक्टीन बेन्जोएट (Emamectin Benzoat) 5 एस. जी. @ 1.0 ग्राम प्रति 4 लीटर पानी या लैम्डासायहेलोथ्रिन (Lamda cyhalothrin) 5 ई. सी. @ 1.0 मिली लीटर प्रति लीटर पानी या मैलाथियान (Malathion) 50 ई. सी. @ 3.0 मिली लीटर प्रति लीटर पानी की दर से घोल बनाकर छिड़काव करना चाहिए।

कृषक भाइयों का प्रक्षेत्र पर प्रशिक्षण

ज. टमाटर और कद्दू वर्गीय सब्जियों के सफेद मक्खी की निगरानी के लिए 5 पीला चिपचिपा पाश (Yellow Sticky Trap) प्रति हेक्टेयर की दर से स्थापित करें।

झ. हानिकारक कीटों के प्राकृतिक शत्रुओं जैसेः कोक्सिनेलिड्स (Coccinellids), लैसविंग (Lacewing), मकड़ी (Spider) जैसे- परभक्षी कीटों के साथ ही साथ अन्य लाभकारी जीवों को संरक्षित करने के उपाय अवश्य करना चाहिए।

ञ. पीत शीरा मोसैक (Yellow Vein Mosaic, YVM) व्याधि से ग्रसित पौध के दिखाई देते ही, उखाड़कर समूल नष्ट करना सुनिश्चित करें।

ट. इन उपायों के बाद भी यदि इनकी संख्या आर्थिक क्षति स्तर (Economic Threshold Level, ETL) तक पहुँचने में सक्षम प्रतित हो रही हो तो संस्तुति के अनुरूप कीटनाशी रसायन यथा ट्राईजोफॉस (Trizophos) 50 ई. सी. @ 1.0-1.5 मिली लीटर प्रति लीटर पानी या ऑक्सीडीमेंटान मिथाइल (Oxy-demeton methyl) 25 ई. सी. @ 2.0 मिली लीटर प्रति लीटर पानी या थियामेंथॉक्साम (Thiamethoxam) 25 डब्लू. जी. @ 1.0 ग्राम प्रति 5 लीटर पानी की दर से छिड़काव करना हितकर रहता है।

ठ. सब्जियों की फसल को माईट के प्रकोप से बचाने के लिए डाईकोफोल (Dicofol) 18.5 ई. सी. @ 2.0 -3.0 मिली लीटर प्रति लीटर पानी या स्पायरोमेसिफेन (Spiromesifen) 22.9 एस. सी. @ 1.0 मिली लीटर प्रति लीटर पानी या क्यूनालफास (Quinalphos) 25 ई. सी. @ 2.0 मिली लीटर प्रति लीटर पानी की दर से घोल बनाकर छिड़काव किया जाना चाहिए।

ड. भिण्डी की फसल को फफूंद जनित व्याधियों से बचाव के लिए ग्रसित पौधों को जड़ से उखाड़कर मिट्टी में दबा देना चाहिए।

ढ. जबकि चूर्णिल आसिता (Powdery Mildew) व्याधि के अधिक प्रकोप होने पर सल्फर (Sulphur) 80 डब्लू. पी. @ 1.0-1.5 किलोग्राम सक्रीय तत्व या डीनोकैप (Dinocap) 48 ई. सी. @ 100 मिली लीटर सक्रीय तत्व प्रति एकड़ की दर से 300-400 लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव कर सकते है।

लौकी का फल

पुष्पन एवं फलन

क. सब्जियों के फसल की इस अवस्था में प्रक्षेत्र के बचे हुये खरपतवारों के पौधों को उखाड़ कर नष्ट कर देना चाहिए, जिससे आगामी फसल में इन खरपतवारों के बीजों का प्रसार नहीं हो सके।

ख. सम्पूर्ण खेत की साफ-सफाई सुनिश्चित करते हुए, व्याधि ग्रसित पौधों को भी उखाड़कर समूल नष्ट कर देना चाहिए।

ग. खेत की सघन निगरानी निश्चित अन्तराल पर करते रहे तथा असामान्य पौधों को इकट्ठा करके अपने जिले के कृषि विज्ञान केन्द्र, जिला कृषि रक्षा कार्यालय, विकास खंड कृषि रक्षा कार्यालय या इनसे सम्बन्धित विशेषज्ञ से समस्या का पहचान कराकर सुरक्षित, पर्यावरण हितैषी, हानिकारक जीवों के प्राकृतिक शत्रुओं पर कम प्रभावी रसायनों द्वारा उपचार करना सुनिश्चित करें।

घ. हानिकारक वयस्क कीटों को आकर्षित करने के लिए प्रति हेक्टेयर 1 प्रकाश पाश (Light trap) स्थापित किया जा सकता है, जो इनके निगरानी के लिए भी उपयुक्त रहेगा।

ङ. खेत में परभक्षी पंक्षियों की कार्यशीलता बढाने के लिए पंक्षी बैठक स्थान–सह-मकड़ी गुणन घोसला (Bird Perch cum Spider Multiplication Cage) स्थापित किया जा सकता है।

फलियों की तड़ाई एवं उपज

सब्जियों के फलों की तुडाई नरम एवं मुलायम अवस्था में करना चाहिए, क्योंकि अधिक देरी होने पर फली में रेशे की मात्रा बढ़ जाती है। परिणामस्वरूप फली की गुणवत्ता कुप्रभावित होती है। निर्यात के लिए फली की तुड़ाई 3-4 दिनों के अन्तराल पर करनी चाहिए, ध्यान इस बात का दिया जाना चाहिए कि फल अपना सामान्य आकार प्राप्त कर चुका हो। यदि उपज की बात की जाय तो समुचित देखरेख, उन्नतशील प्रजाति, सन्तुलित पोषक तत्वों की उपलब्धता एवं उन्नत फसल प्रबन्धन की स्थिति में सब्जियों की फसल से लगभग 100-500 कुंतल प्रति हेक्टेयर उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है।

निष्कर्ष

इस प्रकार यदि किसान भाई उन्नत वैज्ञानिक पद्धति अपनाकर सब्जियों की खेती करें साथ ही ऊपर बाताये गए सावधानियों का समय रहते अनुपालन करे तथा समय-समय पर विशेषज्ञों से सलाह-मशविरा करते रहे तो सब्जियों की खेत से अधिकतम आर्थिक लाभ प्राप्त कर सकते है। साथ अपने सम्पूर्ण परिवार को सुरक्षित एवं पौष्टिक सब्जी भी उपलब्ध करा सकते है।

❖❖

ISSN No. 2583-3316

मशरूम उत्पादन का एफ.पी.ओ. माड्यूलः रोजगार एंव आय सृजन का प्रमुख माध्यम

रामप्रवेश प्रसाद*, रामप्रभात कुमार राय एवं दयाराम

एडवांस सेंटर ऑफ मशरूम रिसर्च, राजेन्द्र प्रसाद केद्रीय कृषि विश्वविद्यालय पूसा, समस्तीपुर

पत्राचारकर्ताः rpprasad79@gmail.com

परिचय

कृषि आधारित अर्थव्यवस्था में मशरूम उत्पादन एक महत्तवपूर्ण विषय है। भूमि उपयोग, भूमि सुधार, फसल विविधीकरण को बढ़ावा देना, कृषि, पशुपालन एवं बागवानी फसल अवशेष प्रबन्धन, रोजगार के अवसर बढ़ाना, कुपोषण एवं गरीबी से छुटकारा दिलाने में मशरूम की अलग उपयोगिता है। मशरूम एक प्रकृति प्रदत्त स्वास्थ वर्धक (भोजन एवं औषधीय) उपहार है। यह प्रायः जंगलों एवं पह्रड़ों में खाद्य, अखाद्य, एवं औषधीय जहरीले रूपों में पाया जाता है। आज के बदलते परिवेश में आय एवं रोजगार के प्रमुख माध्यम के रूप में मशरूम की खेती हो रही है। इसके अलावा भोजन में मशरूम के उपयोग से कुपोषण तथा घातक बीमारी से भी छुटकारा पाया जाता है।

मशरूम की खेती कम से कम जमीन में (खेती बिना खेत के) किया जा सकता है। इसमें उर्ध्व (वर्टिकल) जगह का उपयोग करके ज्यादा उत्पादन किया जा सकता है।

इसकी खेती में न्यूनतम जल का उपयोग होता है, अधिक तकनीक तथा अधिक पूंजी की आवश्यकता नहीं है। इसकी खेती फूस के घर में विभिन्न प्रजातियों को मिलाकर सालोभर सम्भव है। जलवायु परिवर्तन का न्यूनतम असर रसायनमुक्त उत्पादन सम्भव है। यह पौष्टिक एवं औषधीय गुणो से भर पूर है। मशरूम खाने स्वस्थ एवं निरोगित रहते है। इसे बेचकर आय एवं रोजगार सृजन किया जा सकता है।

मशरूम की सभी प्रजातियों, को उगाने के लिये देश में विभिन्न कृषि, बागवानी तथा पशुपालन अपशिष्ट/अवशेष उपलब्ध है। इसमें ओयस्टर, बटन व मिल्की के लिये गेहूँ का भूसा, पुवाल का भूसा, चना, अरहर, सरसो, मक्का का भूसा, मक्का का नेढ़ा गन्ना की सिठ्ठी, पत्ती, विभिन्न फलदार तथा जंगली पेड़ो की पत्तियाँ तथा उनका बुरादा उपलब्ध है, जिनका गरीब लोगो को भी उपयोग करके झोपड़ी बनाने से लेकर मशरूम उगाने में प्रयोग करने की सुविधा है। इसके अलावा पशु अपशिष्ट गोबर को बटन एवं मिल्की मशरूम में केसिंग का प्रयोग करके आय में वृद्धि तथा उत्तम गुणवत्ता का मशरूम उत्पादन किया जा सकता है। बिहार में गेहूँ, धान, दलहन, मक्का, आलू एवं सब्जी का उत्पादन किया जाता है। इससे विभिन्न प्रकार के भूसा की बहुतायत उपलब्धता है।

मशरूम उत्पादन की प्रमुख समस्यायें

मशरूम उत्पादन में आशातीत वृद्धि न तो उत्पादन की दृष्टिकोण से और ना ही भोजन में उपयोग (कुपोषण) की दृष्टिकोण से हो रहा है। इसके अतिरिक्त उत्पादन तथा उपयोग का अभाव की दृष्टिकोण से टिकाऊपन नहीं हे। इस प्रकार मशरूम उत्पादन की प्रमुख समस्यायें निम्नलिखित है।

1. निरन्तर उत्पादन का अभावः प्रतिवर्ष विश्वविद्यालय द्वारा 1,000-2,500 तक युवा एवं बेरोजगार मशरूम उत्पादन में प्रशिक्षित किया जाता है। इसमें 50-60 प्रतिशत लोग खेती शुरू करते है। इसके पश्चात दो से तीन साल बाद उत्पादन बन्द कर देते है। इससे उत्पादन में वृद्धि नहीं हो पाती है।
2. संगठित बाजार के अभाव में ज्यादा लोग खेती करना बन्द कर देते है। व्यवसायिक सोच का अभाव भी एक प्रमुख कारण है।
3. नयी तकनीक के जानकारी का अभाव होने के कारण प्रसंस्करण न होने के कारण लम्बी दूरी तक ताजा माल न पहुँच पाने के कारण भी उत्पादन पर गहरा प्रभाव डालती हैं।
4. समुचित आपूर्ति एवं अच्छी पैकेजिंग का अभाव। मूल्यों

में भी भारी अन्तर, ठंडियों में एका-एक अधिक उत्पादन तथा गर्मियों में कम उत्पादन के चलते समुचित आपूर्ति का अभाव।

5. तकनीकी रूप से दक्ष व्यक्तियो का अभाव।
6. उत्पादन व्यक्तिगत अधारित तथा उत्पादक ही उत्पादन से लेकर बाजार तक का सभी कार्य करना।
7. बीज का समय से तथा उत्तम बीज की उपलब्धता।
8. स्पेन्ट का प्रबन्धन का आभाव।
9. सरकारी तथा अर्धसरकारी क्षेत्रो द्वारा प्रचार एवं प्रसार का अभाव।

इन सब समस्याओं के निराकरण हेतु व्यक्तिगत रूप से मशरूम करने की अपेक्षा समूह में या बड़े समूह (एफ.पी.ओ.) में उत्पादन संगठित तरीके किया जायेंगे तो संगठित रूप से रोजगार विकसित होने में सहायक होगा तथा संगठित बाजार उपलब्ध होगा। एफ.पी.ओ. बनाकर उसके सिद्धान्तों या माड्यूल को अपनाकर समुचित लाभ लिया जा सकता है।

मशरूम उत्पादन तकनीकी एफ.पी.ओ. माड्यूल

मशरूम उत्पादन तकनीकी का एफ.पी.ओ. माड्यूल को निम्नलिखित भागों में बाँटा गया है, जिनका विवरण नीचे सारणी-2 में विस्तार से दिया गया है।

सारणीः 2 एफ.पी.ओ. माड्यूल 100 परिवार के लिये।

एफ.पी.ओ. माड्यूल एक सौपरिवार के लिये							
बीज उत्पादन	कम्पोस्ट उत्पादन	मशरूम उत्पादन	प्रोसेसिंग पैकेजिंग	मशरूम उत्पाद तैयार करना	मशरूम स्पेन्ट प्रबन्ध	विपणन	अन्य कार्य
10	25	100	15	30	100	15	5

क. मशरूम बीज उत्पादनः एफ.पी.ओ. का प्रथम कार्य बीज उत्पादन का कार्य है। बीज मौसम के हिसाब से तैयार किया जाता है। इस कार्य में 10 लोगो की आवश्यकता पड़ेगी और प्रतिदिन 0.5 टन बीज तैयार करके प्रतिमाह 15 टन बीज तैयार होगा, जिसका बाजार मूल्य 1 लाख प्रति टन के हिसाब से 15 लाख रू प्रतिमाह होगा और बीज की आपूर्ति सुचारू रूप से होगा अनुमानित उपज 0.5 टन के हिसाब से 2.5 टन मशरूम का उत्पादन एक क्षेत्र में ओयस्टर,तथा मिल्की मशरूम का उत्पादन होगा, जिसे संगठित रूप से देश में किसी भी शहर में बिक्री करके आय प्राप्त किया जा सकता है।

ख. मशरूम खाद तैयार करनाः बिहार में कुल 10 प्रकार के मशरूम की खेती की जा रही हैं (मौसमी) इसमें ओयस्टर, बटन, मिल्की, एवं पैडीस्ट्रा मशरूम की खेती व्यावसायिक स्तर पर किया जा रहा है, तथा इन मशरूमों को कम्पोस्ट बनाना आसान है। फिर भी सभी उत्पादक (छोटे उत्पादक) खाद तैयार करने में पूँजी के अभाव में समर्थ नहीं होते है। परन्तु खाने की इच्छा तथा आय के लिये परेशान रहते है। क्योंकि ये मशरूम मौसम आधारित है, और समयानुसार इनकी खेती करना आवश्यक है। अतः इन मशरूमों का कम्पोस्ट तैयार करके इनमें बीज मिलाकर तैयार किट के रूप में इसे अच्छी कीमत पर बेचा जा रहा है। इससे कम संसाधनो वाले लोगो को घर पर रोजगार उपलब्ध होगा तथा विभिन्न प्रकार के मशरूम बाजार में हर समय उपलब्ध रहेगा। इस कार्य में 25 लोग को प्रत्यक्ष तथा सैकड़ो (100) लोगो को अप्रत्यक्ष रूप से रोजगार मिलेगा।

औषधीय मशरूम शिटाके, हेरीशियम, किंगओयस्टर, इनोकी, सीजोफाइलम, आरीकुलेरिया, शिटाके इत्यादि मशरूम उगाने में सवस्ट्रेट को उपचारित करना आवश्यकात होता है। अतः व्यक्तिगत रूप से करने पर पूँजी, समय, जगह इत्यादि के अभाव में लोग सक्षम नहीं होते है। इससे ये मशरूम भारत में व्यावसयिक स्तर पर नहीं उगाये जा रहे है। अतः इन मशरूमों की खाद (कम्पोस्ट) तैयार करके बीज बुवाई करके उत्पादको को मुहैया कराने से उत्पादन में व्यापक वृद्धि होगी। ए औषधीय मशरूम कम तापक्रम पर (शिटाके, हेरिशियम मिटाके, किंगओयस्टर, इनोकी) 15-20 डिग्री सेल्सियस पर तथा सीजोफाइलम, ऑरीकुलेरिया, गैनोडर्मा अधिक ताप क्रम 28-38 डिग्री सेल्सियस पर उगाया जाता है, तथा इनके सवस्ट्रेट को तैयार करना तथा बुवाई करने में कुछ मशीनो की आवश्यकता पड़ती हैं। जो एफ.पी.ओ. के माध्यम या बड़े समूह या कोई कम्पनी द्वारा ही सम्भव है।

ग. मशरूम की खेतीः एफ.पी.ओ. के सभी 100 सदस्य इस काम में लगेंगे तथा 1 सदस्य 300 बैग हर माह तैयार करके रखने से प्रतिदिन प्रत्येक सदस्य से कम से कम 5 किलोग्राम तथा ज्यादा से ज्यादा 8-10 किलोग्राम मशरूम

प्राप्त होगा। अर्थात प्रतिदिन 500 किलोग्राम औसत मशरूम की ग्राडिंग, पैकेजिंग, प्रासेसिंग करके बाजार में बिक्री के लिये भेजा जा सकता है। इस प्रक्रिया से प्रत्येक सदस्य द्वारा 20,000-25,000 रू/ प्रतिमाह की आमदनी किया जा सकता है। इसके अलावा औषधीय मशरूम की खेती करने से 40-50 हजार प्रतिमाह आमदनी की जा सकती है।

अतः धान की खेती व्यापक स्तर पर की जाती है। इसमें पुआल अधिक का उत्पादन होता है। पुआल गेहूँ के भूसा से सस्ता होता है, परन्तु इसका रख-रखाव तथा अन्य उपयोग न होने से ज्यादा मात्रा में बरवाद हो जाता है। अतः इस पुआल पर पैडीस्ट्रा मशरूम, ओयस्टर मशरूम तथा मिल्की मशरूम की खेती करके लाभ लिया जा सकता है।

शिटाके, हेरीशियम, सीजोफाइलम, इनोकी, किंग ओयस्टर और ऑरीकुलेरिया मशरूम औषधीय मशरूम है। यद्यपि इनकी खेती लकड़ी या लकड़ी के बुरादे पर अन्य देशों में करके अच्छी उपज तथा आय प्राप्त किया जा रहा है। परन्तु बिहार तथा भारत के अन्य प्रान्तों में इसकी उपलब्धता सीमित है। अतः मशरूमों को गेहूँ के भूसा, लीची के पत्ते, मक्का का नेढ़ा इत्यादि पर उगाने की तकनीक विकसित किया गया है। इसका उपयोग बिहार में किया जा रहा है। जिसका किसान लाभ ले रहे है। बिहार में पशुपालन भी उन्नति पर है। मशरूम उत्पादन में (बट्न एवं मिल्की) गोबर की खाद की आवश्यकता पड़ती है।दो साल पुराना गोबर केसिंग में (बट्न तथा मिल्की मशरूम) उपयोग होता है। इस प्रकार एक तरफ उत्पादन खर्च में कमी आयेगी तथा स्थानीय कृषि, बाग़वानी एवं पशुपोषण के अवशेष उपयोगी सिद्ध होगा तथा प्राकृतिक खेती एवं रसायन (जैविक) मुक्त खेती को बढ़ावा भी मिलेगा, और स्वास्थ्य बिहार की सम्वृद्धि बिहार का माडल पूरा देश अपना कर विकसित भारत-2047 की परिकल्पना पूरा होगा। ये सब कार्य बिना फेडेरेशन के सम्भव नहीं। इस प्रकार मशरूम फेडेरेशन द्वारा सभी कार्य सुचारू रूप से चलाकर निवेश को बढ़ावा मिलेगा, तथा रोजगार सृजन होगा। सकल घरेलू आय में वृद्धि तथा कुपोषण दूर होगा।

घ. ग्रेडिंग, प्रसंस्करण एवं पैकेजिंग: इस कार्य में कुल 15 सदस्यो की आवश्यकता होती है। इनका कार्य मशरूम उत्पादको से मशरूम एकत्रित करके साफ करना, नमी निर्धारित करना तथा ग्रेडिंग करके पैकिंग तथा भण्डारण करना रहेगा। ये सभी कार्य एफ.पी.ओ. में करके विपणन शाखा में भण्डारण किया जायेगा तथा विपणन शाखा बिक्री हेतु बाजार भेजेगा। इसके अलावा मशरूम को सुखौता बनाना ताजा मशरूम की कैनिंग इत्यादि व्यवस्था करके आय में वृद्धि करना है।

ङ. मशरूम के मूल्य वर्धक उत्पादः मशरूम उत्पादन तकनीक का यह प्रमुख कार्य है, क्योंकि मशरूम का उत्पादन सभी लोग कर ले और बिक्री भी कर सकते है, परन्तु समुचित लाभ नहीं होता है। अतः मशरूम की गुणवत्ता, लम्बे समय तक भण्डार हेतु मूल्यवर्धक उत्पाद तैयार करना आवश्यक है एवं व्यावसायिक उत्पाद मूल्य वर्धक उत्पाद 2 (दो) प्रकार के होते है।

- **क. मशरूम के घरेलू उत्पादः** रोजमर्रा की जिन्दगी में ज्यादा से ज्यादा घरो में नास्ता या भोजन के रूप में प्रयोग होता है। इसमें कुछ उत्पाद तुरन्त तैयार करके एक से 2 महीने तक उपयोग करते है। जैसे मशरूम बड़ी, मशरूम सुखौटा, मशरूम पापड़, मशरूम आटा, मशरूम पाउडर, मशरूम भुजिया इत्यादि। कुछ उत्पाद तुरन्त तैयार करके तुरन्त प्रयोग करते है। जैसे मशरूम पकौड़ा, मशरूम हलुआ, मशरूम भुजिया, मशरूम मिनी समोसा विभिन्न प्रकार के लिट्टी, मशरूम सब्जी, मशरूम पनीर, मशरूम लड्डू इत्यादि।
- **ख. मशरूम के व्यवसायिक उत्पादः** मुख्यतयाः मशरूम बिस्किट, मशरूम नमकीन एवं मशरूम मीठा, मशरूम मिनी समोसा, मशरूम भुजिया, मशरूम नमकीन, मशरूम पनीर, मशरूम बड़ी, मशरूम सुखौटा, मशरूम रवा, मशरूम खजूर, मशरूम लड्डू,, मशरूम पेड़ा, मशरूम वरफी, मशरूम गुलाब जामून, मशरूम रसगुल्ला, मशरूम खाजा, मशरूम आचार, मशरूम पापड़, मशरूम सूप इत्यादि, इन सभी को बना कर अच्छी पैकीजिंग करके स्थानीय से लेकर राष्ट्रीय बाजार तक बिक्री किया जा सकता है। इसके अलावा उपभोक्ता द्वारा इसका उपयोग अपने दिनचर्या में करने से कुपोषण दूर किया जा सकता है।

आज कल मशरूम के विभिन्न मूल्यवर्धक उत्पाद तैयार करके बाजार में उपलब्ध कराना आवश्यक है। क्योंकि आधुनिक चमक-दमक तथा स्वास्थ्य के प्रति जागरूकता के कारण पोषक तत्वो के हिसाब से मूल्यवर्धक उत्पाद जैसे-मशरूम बिस्किट, मशरूम मिनी समोसा, मशरूम आटा, पौष्टिक सत्तु, मशरूम पनीर, मशरूम भुजिया, मशरूम गुलाब जामुन, मशरूम लड्डू इत्यादि को तैयार करके इनकी ब्रान्डिंग पैकेजिंग करके बाजार में बिक्री करना है। इसमें कुल 30 सदस्य की आवश्यकता पड़ेगी। इससे आय एवं रोजगार बढ़ेगा तथा

कुपोषण घटेगा।

घ. मशरूम स्पेन्ट प्रबन्धः जब विभिन्न प्रकार के मशरूम का उत्पादन करेंगे तो विभिन्न प्रकार के स्पेन्ट होंगे जिनका प्रबन्ध आवश्यक है। सबसे ज्यादा स्पेन्ट वटन मशरूम का निकलता है, बटन मशरूम का स्पेन्ट सबसे उत्तम कार्बनिक खाद (जैविक खाद) के रूप् में फसल में दिया जाता है। इसके अलावा ओयस्टर एवं पैडीस्ट्रा मशरूम का स्पेन्ट पशु आहार में उपयोगी पाया गया है। इन दोनो मशरूमो का स्पेन्ट भी खाद में उपयोग किया जा सकता है। इसके अलावा अन्य मशरूम के स्पेन्ट को वर्मीकम्पोस्ट बनाने में, उत्तम सवस्ट्रेट होता है। इसके अलावा इन सभी स्पेन्ट का भी मूल्यवर्धक उत्पाद जैसे अण्डा केश, पैकेजिंग पदार्थ, प्लाई आदि भी बनाया जा सकता है। फारमर्स प्रोड्यूसर कम्पनी लिमिटेड (एफ/पी/ओ/) में इन सब कार्यो के लिये सभी सदस्यो का योगदान रहेगा।

ङ. विपणनः यह एक अलग भाग है, जिसके द्वारा बीज से लेकर सभी उत्पादो की बिक्री का कार्य में 15 सदस्यो का योगदान रहेगा। ये सभी सामग्री एक केन्द्र पर एकत्रित करके प्रतिदिन मांग के हिसाब से देश के विभिन्न हिस्सो में पहुँचाने का काम रहेगा। इसके अलावा, जो उत्पादक अपने मशरूम या सम्बाधित पदार्थ बेचने में समर्थ नही है, उनका भी माल लेकर विपणन के पश्चात उचित मूल्य इन उत्पादको को मुहैया कराना, मशरूम उत्पादन को बढ़ावा मिलेगा।

अन्य कार्यः-इसमें 5 सदस्यो का योगदान रहेगा। ये सभी सामग्री अपने समूह में एक भाग से दूसरे भाग तथा विपणन तक पहुँचाने में सहयोग करेंगे।

निष्कर्ष

इस प्रकार एफ/पी/ओ/ माड्यूल द्वारा मशरूम उत्पादन करने से प्रत्यक्ष रूप से 100 लोगो को सीधा रोजगार मिलेगा तथा क्षेत्रो में मशरूम उत्पादन से सम्बन्धित सभी सामग्री एफ0पी0ओ0 द्वारा समय से तथा सस्ते दर पर उपलब्ध होगा। इससे क्षेत्र में मशरूम उत्पादन बढ़ेगा तथा इसके उपयोग द्वारा मानव, पशु तथा मृदा का कुपोषण दूर होगा।

❖❖

ISSN No. 2583-3316

कृषि विस्तार में कृत्रिम बुद्धिमत्ताः उत्तर-पूर्वी पर्वतीय क्षेत्र में कृषि

पी.के. पाठक*, ए.के. मोहंती, ए.के. सिंघा एवं राम दयाल शर्मा

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद - कृषि प्रौद्योगिकी अनुप्रयोग अनुसंधान संस्थान, ज़ोन-VII, उमियम, मेघालय

पत्राचारकर्ता: drpkp19@gmail.com

परिचय

कृषि विस्तार ने लंबे समय से वैज्ञानिक ज्ञान और प्रौद्योगिकियों को अनुसंधान संस्थानों से किसानों तक पहुँचाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। भारत में, कृषि विस्तार प्रणाली परस्पर परंपरागत संपर्क से अधिक गतिशील और प्रौद्योगिकी-सक्षम मॉडल के रूप में विकसित हुई है। कृत्रिम बुद्धिमत्ता (A.I) का आगमन कृषि विस्तार सेवाओं में एक परिवर्तनकारी चरण का प्रतीक है, जो डेटा-संचालित निर्णय लेने, सही समय में सलाह देने और किसानों को व्यक्तिगत सहायता देने में सक्षम है। इस संदर्भ में, भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के तहत कार्य करने वाली कृषि विज्ञान केंद्र (के.वी.के.) प्रणाली, जिला स्तर पर अग्रपंक्ति विस्तार संस्थान के रूप में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

कृषि विज्ञान केन्द्र को आवश्यकता-आधारित प्रशिक्षण प्रदान करने, खेत में (ऑन-फार्म) परीक्षण करने और खेती की वास्तविक स्थितियों में कृषि प्रौद्योगिकियों का प्रदर्शन करने के लिए डिज़ाइन किया गया है। A.I की तकनीक, 'उपयोग करके सीखने' और 'उपयोग करके सिखाने' के सिद्धांतों पर आधारित है, और इन प्रौद्योगिकियों की विशेषता यह है कि ये स्थान-विशिष्ट और किसान-अनुकूल होती हैं। उत्तर पूर्वी पर्वतीय (एनईएच) जैसे क्षेत्रों में जहाँ विविध कृषि-जलवायु परिस्थितियाँ हैं और जहाँ किसान छोटे भूमिधारी और सीमित अवसंरचना वाले होते है, वहाँ कृषि विस्तार प्रणालियों में A.I के एकीकरण होने से पहुँच क्षमता, कार्यक्षमता और इसके प्रभाव क्षमता को बढ़ाने की अपार संभावना हो सकती है।

कृषि विस्तार में कृत्रिम बुद्धिमत्ता की अवधारणा और दायरा

कृत्रिम बुद्धिमत्ता डेटा से जानकारी लेकर, पैटर्न की पहचान करके निर्णय लेना मशीनों और कंप्यूटर प्रणालियों में मानव बुद्धि की नकल करने की क्षमता को दर्शाता है। कृषि विस्तार में, A.I से पारंपरिक परामर्श सेवाओं को बुद्धिमान, भविष्य सूचक और इंटरैक्टिव प्रणालियों में बदलने की सुविधा होती है। मानव संसाधनों और समय-समय पर संपर्क करने पर निर्भर रहने के पारंपरिक पद्धतियों के विपरीत A.I किसानों के साथ निरंतर और उपयुक्त समय में सहभागिता को सक्षम बनाता है। कृषि विस्तार में A.I के दायरे में मौसम और कीट प्रकोप से संबंधित भावी विश्लेषण, फसल और पशुधन प्रबंधन के लिए स्वचालित निर्णय समर्थन प्रणाली, रोग की पहचान के लिए इमेज-आधारित निदान और A.I-संचालित चैटबॉट शामिल हैं जो तत्काल परामर्श सेवाएं प्रदान करते हैं। ये प्रौद्योगिकियाँ समस्या की पहचान करने और समाधान करने के बीच के समय अंतराल को काफी कम कर देती हैं, जिससे कृषि उत्पादकता और अनुकूलता में सुधार होता है।

A.I एकीकरण के लिए एक मंच के रूप में कृषि विज्ञान केन्द्र प्रणाली

कृषि विज्ञान केन्द्र (के.वी.के.) प्रणाली, कृषि विस्तार क्षेत्र में A.I को एकीकृत करने के लिए एक मजबूत संस्थागत मंच के रूप में कार्य करती है। किसानों की तकनीकी जरूरतों को पूरा करने के लिए स्थापित, कृषि विज्ञान केन्द्र प्रशिक्षण कार्यक्रम, अग्रपंक्ति प्रदर्शन और परामर्श सेवाओं सहित कई प्रकार की गतिविधियाँ संचालित करते हैं। ये ज्ञान केंद्र के रूप में कार्य करते हैं, जो अनुसंधान संस्थानों को कृषि समुदायों से जोड़ते हैं, जिससे नवाचारों का प्रभावी प्रसार सुनिश्चित होता है।

विगत वर्षों में, कृषि विज्ञान केन्द्रों ने मोबाइल आधारित परामर्श, मौसम अलर्ट और डिजिटल प्लेटफॉर्म जैसी सूचना

और संचार प्रौद्योगिकियों (आई.सी.टी) को शामिल करके अपने दायरे का विस्तार किया है। ये आई.सी.टी हस्तक्षेप A.I प्रौद्योगिकियों को अपनाने के लिए एक मजबूत आधार प्रदान करते हैं। कृषि विज्ञान केन्द्र का व्यापक नेटवर्क, क्षेत्र के साधारण लोगों के बीच इसकी उपस्थिति, विशेष रूप से दूरस्थ और वंचित क्षेत्रों में व्या पक स्त्र पर A.I-आधारित विस्तार सेवाओं के कार्यान्वयन को सक्षम बनाता है।

कृषि विस्तार में ए.आई.. का अनुप्रयोग

कृत्रिम बुद्धिमत्ता कृषि विस्तार के लिए कई अनुप्रयोगों के माध्यम से क्रांति ला रही है। सबसे महत्वपूर्ण योगदानों में से एक A.I-आधारित परामर्श प्रणालियों का विकास है, जो मृदा उर्वरता, मौसम की स्थिति और फसल की आवश्यकताओं के आधार पर किसानों को अलग-अलग सिफारिशें प्रदान करती हैं। इन प्रणालियों से किसानों को इनपुट उपयोग, सिंचाई शेड्यूलिंग और कीट प्रबंधन के बारे में सूचना आधारित निर्णय लेने में मदद मिलती है।

एक अन्य महत्वपूर्ण अनुप्रयोग A.I-संचालित चैटबॉट और वर्चुअल असिस्टेंट का उपयोग है, जो स्थानीय भाषाओं में किसानों के साथ संवाद कर सकता है और 24×7 उपलब्ध रहता है। यह विशेष रूप से उन क्षेत्रों में फायदेमंद है, जहाँ कृषि विस्तार कर्मी सीमित हैं। इसके अतिरिक्त, इमेज पहचान करने वाली प्रौद्योगिकियों से किसानों को केवल इमेज अपलोड करके फसल रोगों और पोषक तत्वों की कमियों का निदान करने की सुविधा मिलती है, जिससे वास्तविक निरीक्षणों पर निर्भरता कम हो जाती है।

A.I भावी विश्लेषण में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है, जिससे फसल की पैदावार, बाजार के रुझान और जलवायु जोखिमों का पूर्वानुमान लगाया जा सकता है। इस तरह का दृष्टिकोण, योजना बनाकर जोखिम को कम करने में अमूल्य है। इसके अलावा, उपग्रहों, सेंसरों और कृषि रिकॉर्ड सहित कई स्रोतों से बड़े डेटा का एकीकरण कृषि विस्तार सेवाओं की उपयोगिता और विश्वसनीयता को बढ़ाता है।

उत्तरपूर्वी पर्वतीय क्षेत्र में ए.आई. की प्रासंगिकता

भारत के उत्तर पूर्वी पर्वतीय क्षेत्र में कृषि विकास की अलग चुनौतियाँ हैं, जिसमें दुष्कहर भू-भाग, खंडित भूमि जोत, स्थानांतरित खेती प्रथायें और बाजारों और कृषि विस्तार सेवाओं तक सीमित पहुँच शामिल है। इन बाधाओं के बावजूद, इस क्षेत्र में समृद्ध जैव विविधता और टिकाऊ कृषि की काफी संभावना है।

इस संदर्भ में, A.I स्थान-विशिष्ट और जलवायु-अनुकूल परामर्श दे कर परिवर्तनकारी भूमिका निभा सकता है। सुदूर संवेदन और A.I.-आधारित उपकरणों से फसल की स्थिति की निगरानी करने और दुर्गम क्षेत्रों में किसानों को समय पर सचेत करने में मदद मिल सकती है। इसके अलावा, A.I-संचालित बहुभाषी प्लेटफॉर्म से भाषा संबंधी बाधाओं को दूर किया जा सकता है और विविध जनजातीय समुदायों से बेहतर संवाद किया जा सकता है।

उत्तर पूर्वी-पर्वतीय क्षेत्र में कृषि विज्ञान केन्द्रों का प्रभाव पहले से ही काफी अधिक रहा है, जिसमें फसल की सघनता में वृद्धि, स्थानांतरित खेती में कमी और हजारों गांवों और किसानों तक पहुंच बनाना शामिल है। मौजूदा विस्तार ढांचे में A.I को एकीकृत करने से उनकी प्रभावशीलता और स्थिरता को और बढ़ाया जा सकता है।

उत्तर-पूर्वी पर्वतीयक्षेत्र में ए.आई. और एआरवाईए परियोजना

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद द्वारा शुरू की गई ''कृषि में युवाओं को आकर्षित करने और बनाये रखने (आर्या)'' संबंधी परियोजना का उद्देश्य उद्यमिता और कौशल विकास को बढ़ावा देकर ग्रामीण युवाओं को कृषि क्षेत्र में शामिल करना है। कार्यक्रम का कार्यान्वयन चुनिंदा कृषि विज्ञान केन्द्रों के माध्यम से किया जाता है और यह मशरूम की खेती, मुर्गी पालन, मत्स्य पालन और मूल्य संवर्धन जैसे कृषि आधारित उद्यमों की स्थापना पर केंद्रित है।

उत्तर-पूर्वी पर्वतीय क्षेत्र में एआरवाईए परियोजना से नापति, वोखा, तुएनसांग, लुंगलेई, जयंतिया हिल्स और धलाई जिलों सहित कई कृषि विज्ञान केन्द्रों में लागू की गई है। इस परियोजना के अंतर्गत प्रशिक्षण, तकनीकी सहायता और युवाओं को प्रारंभिक वित्तीय सहायता प्रदान करके आय सृजन, रोजगार सृजन और ग्रामीण विकास के क्षेत्र में उल्लेखनीय कार्य किया गया।

एआरवाईए परियोजना गतिविधियों में एआई के एकीकरण से उद्यम नियोजन, बाजार विश्लेषण और जोखिम प्रबंधन के लिए डिजिटल उपकरण प्रदान करके इसकी प्रभावशीलता को बढ़ाया जा सकता है। A.I से कृषि को और अधिक आकर्षक और लाभदायक बनाने के लिए सटीक कृषि प्रथाओं को अपनाने और नवोन्मेजशी कृषि-स्टार्टअप विकसित करने में सहायता मिल सकती है।

कृषि विस्तार सेवाओं में ए.आई. अपनाने में चुनौतियाँ

इसकी क्षमता के बावजूद, कृषि विस्तार में A.I को अपनाने

में कई चुनौतियाँ हैं। प्रमुख बाधाओं में से एक बाधा विश्वसनीय और मानकीकृत डेटा की कमी होना है, जो A.I मॉडल को दुरूस्तष करने के लिए आवश्यक है। उत्तर पूर्वी पर्वतीय क्षेत्र के कई हिस्सों में, डेटा संग्रहण प्रणाली अभी भी अविकसित है, जो A.I अनुप्रयोगों की प्रभावशीलता को सीमित करती है।

बुनियादी ढाँचे में कमी, जैसे खराब इंटरनेट कनेक्टिविटी और डिजिटल उपकरणों तक सीमित पहुँच, A.I प्रौद्योगिकियों को अपनाने में बाधा डालती हैं। इसके अलावा, A.I उपकरणों का प्रभावी ढंग से उपयोग करने के लिए विस्तार कार्मिकों और किसानों के बीच क्षमता निर्माण की आवश्यकता है। डिजिटल साक्षरता एक महत्वपूर्ण बाधा बनी हुई है, विशेष रूप से छोटे और सीमांत किसानों के बीच।

संस्थागत चुनौतियों, जिनमें अनुसंधान, विस्तार और प्रौद्योगिकी प्रदाताओं के बीच सीमित समन्वय शामिल है, के अतिरिक्त विस्तार प्रणालियों में A.I का एकीकरण करना समस्यास को और जटिल बनाता है। इन चुनौतियों का समाधान करने के लिए सरकारी एजेंसियों, अनुसंधान संस्थानों और निजी क्षेत्र के हितधारकों को शामिल करते हुए एक व्यापक और सहयोगात्मक दृष्टिकोण अपनाने की आवश्यकता है।

भावी संभावनाएँ एवं रणनीतियाँ

कृषि विस्तार का भविष्य कृषि विज्ञान केन्द्र जैसी मौजूदा प्रणालियों के साथ A.I के प्रभावी एकीकरण में निहित है। ग्रामीण क्षेत्रों विशेष रूप से उत्तर-पूर्वी पर्वतीय क्षेत्र में डिजिटल बुनियादी ढांचे को मजबूत करना, A.I-आधारित समाधानों के सफल कार्यान्वयन के लिए पहली सीढ़ी है। कृषि विज्ञान केन्द्रों को कार्मिकों और किसानों के क्षमता निर्माण कार्यक्रमों को डिजिटल रूप से दक्ष बनाने और उनकी जागरूकता बढ़ाने पर ध्यान केंद्रित करना चाहिए।

उत्तर पूर्वी पर्वतीय क्षेत्र की अलग कृषि-पारिस्थितिक स्थितियों पर विचार करने वाले क्षेत्र-विशिष्ट A.I मॉडल विकसित करना इसकी प्रासंगिकता और उपयोगिता सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक है। सार्वजनिक-निजी भागीदारी नवाचार को बढ़ावा देने और A.I समाधानों को बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है। इसके अलावा, एआरवाईए परियोजना जैसे प्रमुख कार्यक्रमों के साथ A.I को एकीकृत करने से युवाओं के लिए नए अवसर पैदा हो सकते हैं और कृषि में उद्यमिता को बढ़ावा मिल सकता है।

निष्कर्ष

कृत्रिम बुद्धिमत्ता के माध्यम से कृषि विज्ञान केन्द्रों को अधिक कुशल, उत्तरदायी और किसान-केंद्रित बनाकर कृषि विस्तार में क्रांति लाई जा सकती है। कृषि विज्ञान केन्द्र प्रणाली, अपने मजबूत संस्थागत ढाँचे और सामान्यम लोगों के साथ जुड़कर, A.I प्रौद्योगिकियों के एकीकरण के लिए एक आदर्श मंच प्रदान करती है। उत्तर पूर्वी पर्वतीय क्षेत्र में, जहाँ पारंपरिक विस्तार दृष्टिकोण से काफी चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। A.I इन चुनौतियों को कम करके अधिक सेवायें दे सकता है।

एआरवाईए जैसे कार्यक्रमों के साथ A.I का लाभ उठाकर, कृषि विज्ञान केन्द्र न केवल कृषि उत्पादकता में सुधार कर सकते हैं, बल्कि ग्रामीण युवाओं को सशक्त भी बना सकते हैं और स्थायी आजीविका को बढ़ावा दे सकते हैं। तथापि, इस संभावना को साकार करने के लिए समन्वित प्रयासों और रणनीतिक हस्तक्षेपों के माध्यम से बुनियादी ढाँचे, संस्थागत कमियों और क्षमता से संबंधित चुनौतियों का समाधान करने की आवश्यकता है।

❖❖

ISSN No. 2583-3316

श्री अन्न (मिलेट्सः) पोषण स्वास्थ्य एवं सतत् कृषि का आधार

वेद प्रकाश* एवं विवेक विश्वकर्मा

पादप रोगविज्ञान विभाग, लिंगों मुदियाल कृषि महाविद्यालय एवं अनुसंधान केंद्र नरायणपुर, छत्तीसगढ़

पत्राचारकर्ता: vedprakashchandrakar18@gmail.com

परिचय

भारत एक कृषि प्रधान देश है, जहाँ कृषि न केवल खाद्य सुरक्षा का आधार है बल्कि करोड़ों लोगों की आजीविका का प्रमुख स्रोत भी है। वर्तमान समय में बढ़ती जनसंख्या, कुपोषण, जलवायु परिवर्तन, जल संसाधनों की कमी तथा कृषि लागत में वृद्धि जैसी चुनौतियाँ कृषि क्षेत्र के समक्ष गंभीर समस्या के रूप में उभर रही हैं। ऐसी परिस्थितियों में ऐसी फसलों की आवश्यकता है, जो कम संसाधनों में अधिक उत्पादन देने के साथ-साथ पोषण सुरक्षा भी सुनिश्चित कर सकें।

श्री अन्न (मिलेट्स) प्राचीन काल से भारतीय कृषि एवं खाद्य संस्कृति का अभिन्न अंग रहे हैं। ज्वार, बाजरा, रागी, कोदो, कुटकी, सांवा, कंगनी तथा चेना जैसे मिलेट्स पोषक तत्वों से भरपूर होने के कारण मानव स्वास्थ्य के लिए अत्यंत लाभकारी माने जाते हैं। इनमें प्रोटीन, आहार रेशा, कैल्शियम, आयरन, जिंक, मैग्नीशियम तथा विभिन्न विटामिन प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं। इसी कारण इन्हें 'न्यूट्री-सिरियल्स' या ''सुपर फूड' भी कहा जाता है।

हरित क्रांति के बाद गेहूँ एवं धान की खेती को अधिक प्राथमिकता मिलने के कारण श्री अन्न का क्षेत्रफल एवं उपभोग लगातार घटता गया। किंतु वर्तमान में स्वास्थ्य के प्रति बढ़ती जागरूकता, जलवायु परिवर्तन की चुनौतियों तथा टिकाऊ कृषि प्रणालियों की आवश्यकता के कारण इनका महत्व पुनः बढ़ा है। श्री अन्न कम पानी, कम उर्वरक तथा प्रतिकूल परिस्थितियों में भी सफलतापूर्वक उत्पादन देने की क्षमता रखते हैं, जिससे ये छोटे एवं सीमांत किसानों के लिए लाभदायक फसल सिद्ध हो रहे हैं।

संयुक्त राष्ट्र महासभा द्वारा भारत के प्रस्ताव पर वर्ष 2023 को 'अंतर्राष्ट्रीय मिलेट्स वर्ष' घोषित किया गया, जिससे वैश्विक स्तर पर श्री अन्न के महत्व को नई पहचान मिली। भारत सरकार भी विभिन्न योजनाओं एवं कार्यक्रमों के माध्यम से इनके उत्पादन, प्रसंस्करण एवं उपभोग को बढ़ावा दे रही है।

वर्तमान लेख में श्री अन्न के पोषणीय महत्व, किसानों की आय वृद्धि में योगदान, सतत कृषि विकास में भूमिका तथा भविष्य की संभावनाओं का विस्तृत अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

श्री अन्न का इतिहास एवं विकास

श्री अन्न (मिलेट्स) मानव सभ्यता द्वारा उगाई जाने वाली सबसे प्राचीन खाद्यान्न फसलों में से एक हैं। इनके खेती के प्रमाण लगभग 5,000 से 7,000 वर्ष पुराने पाए गए हैं। भारत, चीन और अफ्रीका को मिलेट्स की उत्पत्ति एवं प्रारंभिक खेती का प्रमुख केंद्र माना जाता है। भारतीय उपमहाद्वीप में प्राचीन काल से ही ज्वार, बाजरा, रागी, कोदो, कुटकी, सांवा तथा कंगनी जैसे श्री अन्न का उत्पादन एवं उपभोग किया जाता रहा है। वेदों, पुराणों तथा अन्य प्राचीन ग्रंथों में भी इन अनाजों का उल्लेख मिलता है, जो भारतीय कृषि एवं संस्कृति में इनके महत्व को दर्शाता है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद देश में खाद्यान्न उत्पादन बढ़ाने के उद्देश्य से हरित क्रांति की शुरुआत की गई। इसके परिणामस्वरूप

गेहूँ एवं धान की उन्नत किस्मों को बढ़ावा मिला और किसानों का रुझान इन फसलों की ओर बढ़ गया। इससे धीरे-धीरे श्री अन्न का क्षेत्रफल और उत्पादन कम होने लगा। कई क्षेत्रों में इनका स्थान गेहूँ एवं चावल ने ले लिया, जिसके कारण लोगों के भोजन में भी इनका उपयोग घटता गया।

वर्तमान समय में कुपोषण, जलवायु परिवर्तन, जल संकट तथा मृदा स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं के कारण श्री अन्न का महत्व पुनः बढ़ा है। इनके उच्च पोषण मूल्य, कम पानी की आवश्यकता तथा प्रतिकूल परिस्थितियों में उत्पादन देने की क्षमता ने इन्हें पुनः कृषि एवं खाद्य सुरक्षा के केंद्र में ला खड़ा किया है। भारत सरकार ने मिलेट्स को 'श्री अन्न' नाम देकर इनके महत्व को नई पहचान प्रदान की है।

श्री अन्न का वर्गीकरण

श्री अन्न (मिलेट्स) को उनके आकार, उत्पादन क्षेत्र तथा उपयोगिता के आधार पर मुख्यतः दो वर्गों में विभाजित किया जाता है, जिन्हें प्रमुख मिलेट्स (Major Millets) एवं लघु मिलेट्स (Minor Millets) कहा जाता है। प्रमुख मिलेट्स में ज्वार (Sorghum), बाजरा (Pearl Millet) तथा रागी (Finger Millet) शामिल हैं, जिनका उत्पादन एवं उपभोग देश के विभिन्न भागों में व्यापक रूप से किया जाता है।

दूसरी ओर, लघु मिलेट्स में कोदो (Kodo Millet), कुटकी (Little Millet), सांवा (Barnyard Millet), कंगनी (Foxtail Millet), चेना (Proso Millet) तथा बर्री (Browntop Millet) शामिल हैं। इन फसलों की खेती मुख्यतः वर्षा आधारित एवं आदिवासी क्षेत्रों में की जाती है। कम पानी, कम उर्वरक तथा प्रतिकूल जलवायु परिस्थितियों में भी सफलतापूर्वक उत्पादन देने की क्षमता के कारण ये फसलें छोटे एवं सीमांत किसानों के लिए अत्यंत उपयोगी सिद्ध होती हैं।

वर्तमान समय में पोषणीय गुणों, जलवायु अनुकूलता तथा सतत कृषि में योगदान के कारण प्रमुख एवं लघु दोनों प्रकार के श्री अन्न खाद्य एवं पोषण सुरक्षा के महत्वपूर्ण आधार के रूप में उभर रहे हैं।

भारत में श्री अन्न का उत्पादन एवं वर्तमान स्थिति

भारत विश्व का सबसे बड़ा श्री अन्न (मिलेट्स) उत्पादक देश है तथा वैश्विक उत्पादन में लगभग 40–43 प्रतिशत का योगदान देता है। देश में ज्वार, बाजरा, रागी तथा विभिन्न लघु मिलेट्स का उत्पादन व्यापक स्तर पर किया जाता है। राजस्थान, कर्नाटक, महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश एवं छत्तीसगढ़ श्री अन्न उत्पादन के प्रमुख राज्य हैं। इनमें राजस्थान बाजरा उत्पादन में अग्रणी है, जबकि कर्नाटक रागी उत्पादन के लिए विशेष रूप से जाना जाता है।

कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय के तृतीय अग्रिम अनुमान (2024-25) के अनुसार भारत में लगभग 12.86 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्र में श्री अन्न की खेती की गई तथा कुल उत्पादन लगभग 18.01 मिलियन टन दर्ज किया गया। यह आँकड़ा देश में श्री अन्न की बढ़ती लोकप्रियता एवं कृषि महत्व को दर्शाता है। विशेष रूप से वर्षा आधारित एवं आदिवासी क्षेत्रों में इन फसलों का उत्पादन ग्रामीण आजीविका और पोषण सुरक्षा का महत्वपूर्ण आधार बना हुआ है।

भारत केवल उत्पादन के क्षेत्र में ही नहीं, बल्कि निर्यात के क्षेत्र में भी अपनी मजबूत उपस्थिति दर्ज करा रहा है। वर्ष 2024-25 में देश से लगभग 1.21 लाख मीट्रिक टन मिलेट्स का निर्यात किया गया, जिसका मूल्य लगभग 59.23 मिलियन अमेरिकी डॉलर रहा। भारतीय श्री अन्न की माँग संयुक्त अरब अमीरात, नेपाल, सऊदी अरब, अमेरिका, जर्मनी तथा बांग्लादेश सहित अनेक देशों में लगातार बढ़ रही है।

पिछले कुछ वर्षों में पोषण सुरक्षा, जलवायु परिवर्तन एवं सतत कृषि के प्रति बढ़ती जागरूकता के कारण श्री अन्न की खेती एवं उपभोग में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है। वर्ष 2023 को 'अंतर्राष्ट्रीय मिलेट्स वर्ष' घोषित किये जाने के बाद इनके उत्पादन, प्रसंस्करण एवं विपणन को विशेष प्रोत्साहन मिला है। वर्तमान में मूल्य संवर्धित उत्पादों की बढ़ती माँग तथा निर्यात की व्यापक संभावनाओं के कारण श्री अन्न किसानों की आय वृद्धि, खाद्य एवं पोषण सुरक्षा तथा सतत कृषि विकास के महत्वपूर्ण आधार के रूप में उभर रहे हैं।

छत्तीसगढ़ में श्री अन्न की संभावनायें

छत्तीसगढ़ राज्य विशेष रूप से आदिवासी और वन क्षेत्रों से युक्त है, जहाँ प्राकृतिक रूप से कम इनपुट वाली खेती की जाती है। बस्तर, नारायणपुर, कांकेर, दंतेवाड़ा, बीजपुर, सुकमा डीव्ज़ कोंडागांव जैसे क्षेत्रों में कोदो-कुटकी की खेती के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ पाई जाती हैं।

यहाँ की वर्षा आधारित कृषि प्रणाली, कम रासायनिक उपयोग और जैव विविधता मिलेट्स उत्पादन के लिए अत्यंत उपयुक्त है। इससे न केवल खाद्य सुरक्षा बढ़ती है बल्कि आदिवासी किसानों की आय में भी सुधार होता है।

श्री अन्न का पोषणीय महत्व

श्री अन्न (मिलेट्स) पोषक तत्वों से भरपूर खाद्यान्न हैं, जिन्हें

'न्यूट्री-सिरियल्स' अथवा 'सुपर फूड' के नाम से भी जाना जाता है। इनमें प्रोटीन, आहार रेशा, कैल्शियम, आयरन, जिंक, मैग्नीशियम तथा विभिन्न विटामिन पर्याप्त मात्रा में पाये जाते हैं। गेहूँ एवं चावल की तुलना में अनेक मिलेट्स में सूक्ष्म पोषक तत्व अधिक मात्रा में उपलब्ध होते हैं, जिससे ये संतुलित आहार का महत्वपूर्ण हिस्सा बनते हैं।

श्री अन्न का नियमित सेवन कुपोषण, एनीमिया, मधुमेह, मोटापा तथा हृदय रोग जैसी समस्याओं के जोखिम को कम करने में सहायक माना जाता है। इनमें उपस्थित उच्च आहार रेशा पाचन क्रिया को बेहतर बनाता है तथा रक्त शर्करा के स्तर को नियंत्रित रखने में सहायता करता है। इसके अतिरिक्त अधिकांश मिलेट्स ग्लूटेन मुक्त होते हैं, जिससे वे विशेष आहार की आवश्यकता वाले व्यक्तियों के लिए भी उपयुक्त हैं।

प्रमुख श्री अन्नों के पोषणीय मूल्य तालिका 1 में प्रदर्शित किए गए हैं, जिससे इनके पोषणीय महत्व का स्पष्ट आकलन किया जा सकता है।

श्री अन्न	प्रोटीन (ग्राम)	कैल्सियम (मि.ग्रा.)	आयरन (मि.ग्रा.)
ज्वार (Sorghum)	10.4	25	4.1
बाजरा (Pearl Millet)	11.6	42	8.0
रागी (Finger Millet)	7.3	344	3.9
कोदो (Kodo Millet)	8.3	27	0.5
कुटकी (Little Millet)	9.7	17	9.3
सांवा (Barnyard Millet)	11.2	22	18.6

जलवायु परिवर्तन एवं सतत कृषि में श्री अन्न की भूमिका

वर्तमान समय में जलवायु परिवर्तन कृषि क्षेत्र के समक्ष एक गंभीर चुनौती के रूप में उभर रहा है। अनियमित वर्षा, बढ़ता तापमान, सूखा, बाढ़ तथा जल संसाधनों की कमी के कारण कृषि उत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है। ऐसी परिस्थितियों में श्री अन्न (मिलेट्स) जलवायु-अनुकूल फसलों के रूप में किसानों के लिए एक प्रभावी विकल्प बनकर उभरे हैं।

श्री अन्न की फसलें कम पानी में भी सफलतापूर्वक उगाई जा सकती हैं तथा इनमें सूखा एवं उच्च तापमान सहन करने की क्षमता होती है, जहाँ धान की खेती के लिए लगभग 3,000–5,000 लीटर पानी प्रति किलोग्राम उत्पादन की आवश्यकता होती है, वहीं अधिकांश मिलेट्स अपेक्षाकृत बहुत कम जल की आवश्यकता में भी अच्छा उत्पादन प्रदान करते हैं। इसके कारण जल संकट वाले क्षेत्रों में इनका महत्व और अधिक बढ़ जाता है।इसके अतिरिक्त, श्री अन्न की फसलें कम उर्वर भूमि एवं सीमित कृषि निवेश में भी उत्पादन देने में सक्षम होती हैं। इनमें कीट एवं रोगों का प्रकोप अपेक्षाकृत कम होने के कारण रासायनिक कीटनाशकों एवं उर्वरकों का उपयोग भी कम करना पड़ता है, जिससे उत्पादन लागत में कमी आती है तथा पर्यावरणीय प्रदूषण भी घटता है।

श्री अन्न आधारित कृषि प्रणाली मृदा स्वास्थ्य संरक्षण, जैव विविधता संवर्धन एवं प्राकृतिक संसाधनों के सतत उपयोग को बढ़ावा देती है। जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को कम करने तथा कृषि को अधिक टिकाऊ बनाने में इनकी महत्वपूर्ण भूमिका है। इसी कारण इन्हें 'Climate Smart Crops' अर्थात् जलवायु-स्मार्ट फसलों के रूप में भी जाना जाता है। अतः यह कहा जा सकता है कि श्री अन्न न केवल खाद्य एवं पोषण सुरक्षा सुनिश्चित करने में सहायक हैं, बल्कि जलवायु परिवर्तन की चुनौतियों का सामना करने तथा सतत कृषि,विकास को बढ़ावा देने में भी महत्वपूर्ण योगदान प्रदान करते हैं।

किसानों की आय एवं ग्रामीण आजीविका में श्री अन्न का योगदान

भारत में लगभग 86 प्रतिशत किसान लघु एवं सीमांत श्रेणी के हैं, जिनके लिए कम लागत एवं स्थिर आय प्रदान करने वाली फसलें अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। श्री अन्न (मिलेट्स) ऐसी फसलें हैं, जिनकी खेती अपेक्षाकृत कम पानी, कम उर्वरक एवं सीमित कृषि निवेश में की जा सकती है। इसके कारण उत्पादन लागत कम होती है तथा किसानों को अधिक आर्थिक लाभ प्राप्त होता है।

देश के अनेक वर्षा आधारित एवं आदिवासी क्षेत्रों में श्री अन्न ग्रामीण आजीविका का प्रमुख आधार हैं। विशेष रूप से कोदो,

कुटकी, सांवा एवं कंगनी जैसी लघु मिलेट्स उन क्षेत्रों में भी सफलतापूर्वक उगाई जाती हैं, जहाँ अन्य फसलों का उत्पादन कठिन होता है। भारत में लगभग 1.2 करोड़ हेक्टेयर से अधिक क्षेत्र में मिलेट्स की खेती की जाती है, जिससे लाखों किसान प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से जुड़े हुए हैं।

श्री अन्न की फसलें जलवायु परिवर्तन के प्रति अपेक्षाकृत अधिक सहनशील होती हैं, जिससे सूखा, अनियमित वर्षा एवं अन्य प्राकृतिक जोखिमों के दौरान भी किसानों को उत्पादन प्राप्त होता रहता है। इससे कृषि जोखिम कम होता है तथा किसानों की आय में स्थिरता बनी रहती है। इसके अतिरिक्त, बढ़ती स्वास्थ्य जागरूकता एवं पौष्टिक खाद्य पदार्थों की माँग के कारण बाजार में श्री अन्न की माँग निरंतर बढ़ रही है, जिससे किसानों को बेहतर मूल्य प्राप्त होने की संभावनायें बढ़ी हैं।

ग्रामीण एवं आदिवासी क्षेत्रों में श्री अन्न केवल एक खाद्यान्न फसल ही नहीं, बल्कि खाद्य एवं पोषण सुरक्षा का महत्वपूर्ण स्रोत भी हैं। इनके उत्पादन से किसानों की आत्मनिर्भरता बढ़ती है तथा ग्रामीण अर्थव्यवस्था को मजबूती मिलती है। इस प्रकार श्री अन्न किसानों की आय वृद्धि, कृषि जोखिम में कमी तथा ग्रामीण आजीविका को सुदृढ़ बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं।

छत्तीसगढ़ में श्री अन्न (कोदो-कुटकी) खेती का आर्थिक प्रभावः एक गहन अध्ययन

छत्तीसगढ़ के बस्तर क्षेत्र के एक आदिवासी गाँव में किसानों ने पारंपरिक धान की खेती पर निर्भरता कम करके कोदो और कुटकी जैसी श्री अन्न फसलों की खेती अपनाई। यह निर्णय कृषि विभाग और स्थानीय स्वयं सहायता समूहों के प्रशिक्षण कार्यक्रम के बाद लिया गया।प्रारंभिक अवस्था में किसानों के पास सीमित संसाधन, वर्षा आधारित भूमि और कम बाजार जानकारी थी। लेकिन श्री अन्न की खेती में कम लागत, कम पानी की आवश्यकता और स्थानीय जलवायु के अनुकूलता के कारण उत्पादन सफल रहा, पहले जहाँ किसान केवल धान पर निर्भर थे, वहीं अब उन्होंने फसल विविधीकरण अपनाया।

प्रमुख परिणाम

- खेती की लागत लगभग 35–40% कम हुई
- प्रति एकड़ शुद्ध आय में 30–50% वृद्धि दर्ज की गई
- सूखा और अनियमित वर्षा का प्रभाव कम हुआ
- स्थानीय बाजार में कोदो-कुटकी की माँग बढ़ी
- महिला स्वयं सहायता समूहों (SHG) ने इस उत्पादन को आगे बढ़ाते हुए मिलेट आधारित उत्पाद जैसे लड्डू, बिस्कुट और स्वास्थ्य आटा बनाना शुरू किया। इससे अतिरिक्त आय का स्रोत भी विकसित हुआ, इसके अलावा, कुछ युवा किसानों ने छोटे स्तर पर प्रसंस्करण (processing unit) शुरू कर ग्रामीण उद्यमिता को बढ़ावा दिया।

श्री अन्न का मूल्य संवर्धन, नवाचार एवं उद्यमिता

वर्तमान समय में श्री अन्न (मिलेट्स) केवल पारंपरिक खाद्यान्न नहीं रह गये हैं, बल्कि स्वास्थ्य, पोषण एवं कृषि-आधारित उद्योगों के नए अवसरों के रूप में उभर रहे हैं। बदलती जीवनशैली तथा पौष्टिक खाद्य पदार्थों की बढ़ती माँग के कारण मिलेट आधारित उत्पादों का बाजार निरंतर विस्तार कर रहा है। इसने किसानों, युवाओं एवं महिला उद्यमियों के लिए नये रोजगार एवं स्वरोजगार के अवसर सृजित किए हैं।

पारंपरिक उत्पादों के अतिरिक्त आज मिलेट्स का उपयोग हेल्थ ड्रिंक्स, एनर्जी बार, मिलेट पिज़्ज़ा बेस, ग्लूटेन-फ्री ब्रेड, इंस्टेंट ब्रेकफास्ट मिक्स, बेबी फूड तथा स्पोर्ट्स न्यूट्रिशन उत्पादों के निर्माण में किया जा रहा है। इन नवाचारी उत्पादों की मांग शहरी क्षेत्रों तथा ऑनलाइन बाजारों में तेजी से बढ़ रही है। इससे श्री अन्न का मूल्य कई गुना बढ़ जाता है तथा किसानों को बेहतर आर्थिक लाभ प्राप्त होता है।

डिजिटल प्लेटफॉर्म, ई-कॉमर्स वेबसाइटों तथा सोशल मीडिया मार्केटिंग के माध्यम से ग्रामीण उद्यमी अब अपने उत्पादों को स्थानीय बाजारों से आगे राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर तक पहुँचाने में सक्षम हो रहे हैं। कई किसान उत्पादक संगठन (FPOs) एवं महिला स्व-सहायता समूह (SHGs) मिलेट आधारित ब्रांड विकसित कर सीधे उपभोक्ताओं तक उत्पाद पहुँचा रहे हैं।

इसके अतिरिक्त, कृषि स्टार्टअप्स द्वारा मिलेट प्रसंस्करण, स्मार्ट पैकेजिंग, ब्रांडिंग एवं विपणन के क्षेत्र में नये नवाचार किए जा रहे हैं। इससे युवाओं के लिए कृषि को एक लाभकारी व्यवसाय के रूप में विकसित करने की संभावनायें बढ़ी हैं। श्री अन्न आधारित उद्यमिता न केवल किसानों की आय में वृद्धि कर रही है, बल्कि ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार सृजन एवं आर्थिक विकास को भी गति प्रदान कर रही है।

इस प्रकार, मूल्य संवर्धन, आधुनिक तकनीकों एवं नवाचारों के समन्वय से श्री अन्न भविष्य की कृषि-आधारित अर्थव्यवस्था का एक महत्वपूर्ण आधार बनते जा रहे हैं।

श्री अन्न → प्रसंस्करण → मूल्य संवर्धित उत्पाद → बेहतर बाजार मूल्य → आय वृद्धि → ग्रामीण रोजगार

मिलेट कैफेः छत्तीसगढ़ में एक नवाचार आधारित पहल

छत्तीसगढ़ में मिलेट कैफे (Millet Café) की शुरुआत वर्ष

2022 में एक महत्वपूर्ण नवाचार मॉडल के रूप में हुई। राज्य का पहला मिलेट कैफे रायगढ़ (Raigarh) जिले में 22 मई 2022 को स्थापित किया गया था। यह पहल मुख्य रूप से महिला स्वयं सहायता समूहों (SHGs) की भागीदारी के माध्यम से शुरू की गई, जिसका उद्देश्य पारंपरिक श्री अन्न जैसे कोदो, कुटकी, रागी और बाजरा को आधुनिक खानपान संस्कृति से जोड़ना था।

इस पहल का प्रमुख उद्देश्य मिलेट आधारित खाद्य उत्पादों को आम जनता तक पहुँचाना तथा इनके पोषणीय महत्व के प्रति जागरूकता बढ़ाना था। यह मॉडल न केवल स्वास्थ्य सुधार की दिशा में एक कदम है, बल्कि यह ग्रामीण अर्थव्यवस्था और कृषि आधारित आजीविका को मजबूत करने की दिशा में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

प्रारंभिक सफलता के बाद इस पहल का तेजी से विस्तार किया गया। वर्ष 2023 में मिलेट कैफे का विस्तार रायपुर स्थित इंदिरा गाँधी कृषि विश्वविद्यालय (IGKV) परिसर, कोरबा, बालोद एवं अन्य जिलों तक किया गया। विशेष रूप से 2023 को 'International Year of Millets' घोषित किये जाने के कारण इस कार्यक्रम को और अधिक गति तथा पहचान प्राप्त हुई।

इन कैफे में कोदो, कुटकी और रागी से बने पौष्टिक व्यंजन जैसे इडली, डोसा, लड्डू, बिस्कुट, खिचड़ी तथा अन्य रेडी-टू-ईट उत्पाद उपलब्ध कराये जाते हैं। इससे न केवल लोगों में स्वस्थ एवं संतुलित आहार के प्रति जागरूकता बढ़ी है, बल्कि जंक फूड के स्थान पर पारंपरिक एवं पोषणयुक्त भोजन को अपनाने की प्रवृत्ति भी विकसित हुई है।

मुख्य उद्देश्य

मिलेट कैफे पहल के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं:

- पारंपरिक श्री अन्न को आधुनिक खाद्य संस्कृति से जोड़ना
- लोगों में पोषण एवं स्वास्थ्य के प्रति जागरूकता बढ़ाना
- किसानों के लिए स्थायी बाजार (assured market linkage) उपलब्ध कराना।
- ग्रामीण क्षेत्रों में उद्यमिता एवं मूल्य संवर्धन को बढ़ावा देना
- महिला स्वयं सहायता समूहों (SHGs) को रोजगार एवं आर्थिक सशक्तिकरण प्रदान करना।

सरकारी पहल एवं योजनाएँ

श्री अन्न (मिलेट्स) के पोषणीय, आर्थिक एवं पर्यावरणीय महत्व को देखते हुए भारत सरकार द्वारा पिछले कुछ वर्षों में इनके उत्पादन, प्रसंस्करण, विपणन एवं उपभोग को बढ़ावा देने हेतु अनेक महत्वपूर्ण पहलें की गई हैं। इन पहलों का उद्देश्य केवल किसानों की आय में वृद्धि करना ही नहीं, बल्कि देश की पोषण सुरक्षा को सुदृढ़ करना तथा जलवायु-अनुकूल कृषि को प्रोत्साहित करना भी है।

भारत सरकार ने वर्ष 2018 में मिलेट्स को आधिकारिक रूप से 'न्यूट्री-सिरियल्स' (Nutri-Cereals) का दर्जा प्रदान किया, जिससे इनके प्रति जागरूकता बढ़ाने और अनुसंधान को प्रोत्साहित करने में सहायता मिली। इसके पश्चात भारत के प्रस्ताव पर संयुक्त राष्ट्र महासभा ने वर्ष 2023 को 'अंतर्राष्ट्रीय मिलेट्स वर्ष' (International Year of Millets-2023) घोषित किया। इस ऐतिहासिक पहल ने वैश्विक स्तर पर श्री अन्न को नई पहचान दिलाई तथा भारत को मिलेट्स के वैश्विक केंद्र के रूप में स्थापित किया।

कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय द्वारा संचालित राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा मिशन (NFSM) के अंतर्गत किसानों को गुणवत्तायुक्त बीज, उन्नत उत्पादन तकनीक, प्रदर्शन कार्यक्रम तथा प्रशिक्षण उपलब्ध कराया जा रहा है। इसके अतिरिक्त भारतीय कृषि

अनुसंधान परिषद (ICAR) एवं भारतीय मिलेट अनुसंधान संस्थान (IIMR), हैदराबाद द्वारा उच्च उत्पादकता वाली किस्मों के विकास, जलवायु-अनुकूल तकनीकों तथा मूल्य संवर्धित उत्पादों पर निरंतर अनुसंधान किया जा रहा है।

राज्य स्तर पर भी अनेक नवाचारी कार्यक्रम संचालित किये जा रहे हैं। ओडिशा मिलेट मिशन (OMM) को देश के सबसे सफल मिलेट कार्यक्रमों में से एक माना जाता है, जिसने हजारों किसानों को पुनः श्री अन्न की खेती से जोड़ा है। इसी प्रकार छत्तीसगढ़, कर्नाटक, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र तथा अन्य राज्यों में भी विशेष मिलेट मिशन एवं प्रोत्साहन कार्यक्रम चलाए जा रहे हैं। इन कार्यक्रमों के माध्यम से किसानों को तकनीकी सहायता, बाजार संपर्क एवं प्रसंस्करण सुविधाये उपलब्ध कराई जा रही हैं।

सरकार द्वारा श्री अन्न को जन-जन तक पहुँचाने के लिये सार्वजनिक वितरण प्रणाली (PDS), मध्याह्न भोजन योजना (PM POSHAN), आंगनबाड़ी सेवाओं तथा पोषण अभियान जैसी योजनाओं में शामिल करने के प्रयास किये जा रहे हैं। इससे एक ओर किसानों को स्थायी बाजार उपलब्ध होगा, वहीं दूसरी ओर बच्चों, महिलाओं एवं अन्य वर्गों को पौष्टिक खाद्य पदार्थ प्राप्त होंगे।

इसके अतिरिक्त, 'वोकल फॉर लोकल', 'आत्मनिर्भर भारत' एवं कृषि-आधारित स्टार्टअप्स को प्रोत्साहन देने वाली योजनाओं के माध्यम से मिलेट आधारित उद्यमिता को बढ़ावा दिया जा रहा है। इससे किसानों, महिला स्व-सहायता समूहों (SHGs), किसान उत्पादक संगठनों (FPOs) तथा ग्रामीण युवाओं के लिए नये रोजगार एवं स्वरोजगार के अवसर विकसित हो रहे हैं।

इस प्रकार, केंद्र एवं राज्य सरकारों द्वारा संचालित विभिन्न योजनायें एवं कार्यक्रम श्री अन्न को पुनः भारतीय कृषि एवं खाद्य प्रणाली का अभिन्न अंग बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। ये पहलें भविष्य में पोषण सुरक्षा, किसान समृद्धि, ग्रामीण विकास एवं सतत कृषि के लक्ष्यों को प्राप्त करने में अत्यंत सहायक सिद्ध होंगी।

श्री अन्न के समक्ष चुनौतियाँ एवं समाधान

श्री अन्न (मिलेट्स) को भविष्य की खाद्य एवं पोषण सुरक्षा का आधार माना जा रहा है, किंतु इनके उत्पादन, प्रसंस्करण एवं विपणन के क्षेत्र में अनेक चुनौतियाँ विद्यमान हैं। भारत विश्व का सबसे बड़ा मिलेट उत्पादक देश होने के बावजूद कुल कृषि क्षेत्र का अपेक्षाकृत छोटा भाग ही श्री अन्न की खेती के अंतर्गत आता है। हरित क्रांति के पश्चात गेहूँ एवं धान को अधिक प्रोत्साहन मिलने से कई पारंपरिक मिलेट फसलें मुख्यधारा से दूर होती चली गईं।

उत्पादन स्तर पर गुणवत्तायुक्त बीजों की सीमित उपलब्धता, उन्नत कृषि तकनीकों का अपर्याप्त प्रसार तथा यंत्रीकरण की कमी प्रमुख चुनौतियाँ हैं। वर्तमान में भारत में मिलेट्स की औसत उत्पादकता लगभग 1.4–1.5 टन प्रति हेक्टेयर है, जिसे वैज्ञानिक तकनीकों एवं उन्नत किस्मों के माध्यम से और बढ़ाया जा सकता है। अधिकांश मिलेट उत्पादक किसान वर्षा आधारित क्षेत्रों में खेती करते हैं, जहाँ संसाधनों की उपलब्धता सीमित रहती है।

विपणन एवं मूल्य श्रृंखला की कमजोर संरचना भी एक महत्वपूर्ण चुनौती है। गेहूँ एवं धान की तुलना में मिलेट्स के लिए खरीद, भंडारण एवं प्रसंस्करण सुविधायें अपेक्षाकृत कम विकसित हैं। कई क्षेत्रों में किसानों को न्यूनतम समर्थन मूल्य (MSP) का लाभ प्रभावी रूप से प्राप्त नहीं हो पाता, जिससे उन्हें उचित मूल्य नहीं मिल पाता।

इन चुनौतियों के समाधान हेतु गुणवत्तायुक्त बीजों की उपलब्धता, उन्नत उत्पादन तकनीकों का प्रसार, प्रसंस्करण इकाइयों की स्थापना तथा मजबूत विपणन नेटवर्क का विकास आवश्यक है। किसान उत्पादक संगठनों (FPOs), डिजिटल विपणन प्लेटफॉर्म तथा सरकारी खरीद व्यवस्था को सुदृढ़ बनाकर किसानों की आय में वृद्धि की जा सकती है। साथ ही विद्यालयों, आंगनबाड़ी केंद्रों एवं सार्वजनिक वितरण प्रणाली में श्री अन्न आधारित खाद्य पदार्थों को बढ़ावा देकर इनके उपभोग को बढ़ाया जा सकता है।

अतः समन्वित नीतिगत प्रयासों, वैज्ञानिक अनुसंधान एवं जन-जागरूकता के माध्यम से इन चुनौतियों को अवसरों में परिवर्तित किया जा सकता है और श्री अन्न को देश की कृषि एवं पोषण सुरक्षा की मुख्यधारा में स्थापित किया जा सकता है।

भविष्य की संभावनायें

वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में श्री अन्न को 'भविष्य का खाद्यान्न' माना जा रहा है। बढ़ती जनसंख्या, जलवायु परिवर्तन, जल संकट तथा पोषण संबंधी चुनौतियों के बीच मिलेट्स एक टिकाऊ एवं पोषणयुक्त विकल्प के रूप में उभर रहे हैं। भारत विश्व के कुल मिलेट उत्पादन में लगभग 40–43 प्रतिशत योगदान देता है, जिससे इस क्षेत्र में नेतृत्व की व्यापक संभावनाएँ मौजूद हैं।

स्वास्थ्य के प्रति बढ़ती जागरूकता के कारण देश एवं विदेश

में मिलेट आधारित खाद्य पदार्थों की मांग लगातार बढ़ रही है। ग्लूटेन-मुक्त, उच्च फाइबर एवं पोषक तत्वों से भरपूर होने के कारण मिलेट उत्पाद आधुनिक उपभोक्ताओं की पहली पसंद बनते जा रहे हैं। प्रसंस्करण, मूल्य संवर्धन एवं निर्यात के क्षेत्र में भी व्यापक संभावनायें उपलब्ध हैं।

भारत सरकार, कृषि अनुसंधान संस्थानों तथा निजी क्षेत्र के संयुक्त प्रयासों से उन्नत किस्मों का विकास, आधुनिक प्रसंस्करण तकनीकों का विस्तार तथा बाजार सुविधाओं का सुदृढ़ीकरण किया जा रहा है। इससे किसानों की आय में वृद्धि, ग्रामीण रोजगार सृजन तथा कृषि आधारित उद्यमिता को नई दिशा मिलने की संभावना है। अतः आने वाले वर्षों में श्री अन्न न केवल भारत की खाद्य एवं पोषण सुरक्षा को सुदृढ़ करेंगे, बल्कि जलवायु-स्मार्ट कृषि, ग्रामीण विकास एवं आत्मनिर्भर कृषि अर्थव्यवस्था के निर्माण में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाएँगे।

निष्कर्ष

श्री अन्न (मिलेट्स) भारतीय कृषि एवं खाद्य प्रणाली की एक अमूल्य धरोहर हैं। इनके उत्कृष्ट पोषणीय गुण, कम जल आवश्यकता, जलवायु परिवर्तन के प्रति सहनशीलता तथा सीमित संसाधनों में उत्पादन देने की क्षमता इन्हें भविष्य की कृषि के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण बनाती है। वर्तमान समय में जब विश्व खाद्य सुरक्षा, कुपोषण एवं पर्यावरणीय चुनौतियों का सामना कर रहा है, तब श्री अन्न एक प्रभावी एवं टिकाऊ समाधान प्रस्तुत करते हैं।

भारत सरकार द्वारा किये गये प्रयासों, अंतर्राष्ट्रीय मिलेट्स वर्ष 2023 की सफलता तथा बढ़ती उपभोक्ता जागरूकता ने श्री अन्न को पुनः मुख्यधारा में स्थापित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। किसानों की आय वृद्धि, ग्रामीण रोजगार सृजन, महिला सशक्तिकरण तथा मूल्य संवर्धन की दृष्टि से भी इनका महत्व निरंतर बढ़ रहा है।

अतः यह आवश्यक है कि श्री अन्न के उत्पादन, प्रसंस्करण, विपणन एवं उपभोग को और अधिक प्रोत्साहित किया जाये। वैज्ञानिक अनुसंधान, प्रभावी नीतियों एवं जन-जागरूकता के समन्वित प्रयासों द्वारा श्री अन्न को भारत की खाद्य एवं पोषण सुरक्षा का मजबूत आधार बनाया जा सकता है। वास्तव में, श्री अन्न केवल एक खाद्यान्न नहीं, बल्कि स्वस्थ समाज, समृद्ध किसान एवं सतत कृषि की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम हैं।

संदर्भ

ICAR–Indian Institute of Millets Research (IIMR), Hyderabad.

Ministry of Agriculture and Farmers Welfare, Government of India.

APEDA, Government of India.

National Institute of Nutrition (NIN), Hyderabad.

FAO. Millets and Sustainable Food Systems Reports.

International Year of Millets 2023 Documents.

National Food Security Mission (NFSM) Guidelines.

Annual Reports, Department of Agriculture & Farmers Welfare.

❖❖

ISSN No. 2583-3316

क्रॉसेंड्रा की व्यावसायिक खेती

मेधा साह* , युगेश कुमार एवं योगिता पटेल

पुष्पविज्ञान एवं भू-दृश्य विभाग

पंडित किशोरीलाल शुक्ल उद्यानिकी महाविद्यालय एवं अनुसंधान केंद्र, राजनांदगांव

महात्मा गाँधी उद्यानिकी एवं वानिकी विश्वविद्यालय, दुर्ग (छत्तीसगढ़)

पत्राचारकर्ता: medhasahams@gmail.com

परिचय

क्रॉसेंड्रा (*Crossandra infundibuliformis*) एक सुंदर सजावटी पुष्पीय पौधा है,जो एकेन्थेसि परिवार से है, जिसे सामान्यतः 'अग्नि-पुष्प' या 'फायरक्रैकर फ्लावर' कहा जाता है। यह पौधा भारत तथा दक्षिण एशिया के उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में व्यापक रूप से उगाया जाता है। इसके फूल नारंगी, पीले, लाल तथा गुलाबी रंग के होते हैं और लंबे समय तक खिले रहते हैं। क्रॉसेंड्रा का उपयोग उद्यानों की सजावट, गमलों में रोपण तथा फूलों की मालायें और वेणियाँ बनाने में किया जाता है। यह पौधा गर्म एवं आर्द्र जलवायु में अच्छी वृद्धि करता है तथा अच्छी जल निकास वाली उपजाऊ मिट्टी में बेहतर विकसित होता है। इसका प्रवर्धन मुख्यतः बीजों एवं कलमों द्वारा किया जाता है।

आकर्षक रंगों, लंबे समय तक पुष्पन करने की क्षमता तथा कम देखभाल की आवश्यकता के कारण क्रॉसेंड्रा एक लोकप्रिय सजावटी पौधा है। यह घरों, उद्यानों, पार्कों तथा सार्वजनिक स्थलों की शोभा बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इसके फूलों की बाजार में अच्छी माँग होने के कारण इसकी व्यावसायिक खेती भी की जाती है, जिससे कृषकों को अच्छा आर्थिक लाभ प्राप्त होता है।

किस्में

- **दिल्ली क्रोसैन्ड्राः** बड़े नारंगी फूलों वाली लोकप्रिय किस्म।
- **ल्यूटिया येलोः** पीले रंग के आकर्षक फूलों वाली किस्म।
- **सेबाकुलिस रेडः** लाल रंग के फूलों वाली किस्म।
- **लक्ष्मीः** अधिक फूल उत्पादन देने वाली उन्नत किस्म।
- **डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलामः** अधिक उपज एवं आकर्षक फूलों वाली किस्म।
- **अरका अम्बाराः** बड़े नारंगी फूलों वाली व्यावसायिक किस्म।

जलवायु

क्रोसैन्ड्राउष्ण एवं आर्द्र जलवायु की फसल है। इसकी अच्छी वृद्धि एवं पुष्प उत्पादन के लिए 20–35ष्ण तापमान उपयुक्त रहता है। यह पाले को सहन नहीं कर पाती तथा अधिक वर्षा और जलभराव से पौधों को हानि होती है।

मिट्टी

- अच्छी जल निकास वाली मिट्टी उपयुक्त होती है।
- दोमट या बलुई दोमट मिट्टी सबसे अच्छी मानी जाती है।
- मिट्टी में पर्याप्त जैविक पदार्थ होना चाहिए।
- मिट्टी का pH 6.0 से 7.0 उपयुक्त रहता है।
- जलभराव वाली मिट्टी में पौधों की वृद्धि प्रभावित होती है।

खेत की तैयारी

- खेत की 2 से 3 गहरी जुताई करें।
- प्रत्येक जुताई के बाद पाटा लगाकर मिट्टी को भुरभुरा एवं समतल बनाएं।
- अंतिम जुताई के समय 20 से 25 टन प्रति हेक्टेयर सड़ी हुई गोबर की खाद मिलाएं।
- खेत से खरपतवार,पत्थर तथा अन्य अवांछित पदार्थ हटा दें।
- खेत में उचित जल निकास की व्यवस्था करें।

- रोपाई के लिए क्यारियां तैयार करें।
- खेत को रोपण के लिए तैयार रखें।

प्रवर्धन

क्रॉसेंड्रा का प्रवर्धन मुख्यतः बीज द्वारा तथा कुछ उन्नत किस्मों में तना कलम द्वारा किया जाता है।

रोपाई का समय

- **बीज की बुवाई सामान्यतः** जून–जुलाई में की जाती है।
- सिंचाई की सुविधा होने पर फरवरी–मार्च में भी बुवाई की जा सकती है।
- नर्सरी में पौधे तैयार करके 4–6 सप्ताह बाद मुख्य खेत में रोपाई की जाती है।
- वर्षा ऋतु का समय रोपाई के लिए सबसे उपयुक्त माना जाता है।

खाद एवं उर्वरक

- खेत की तैयारी के समय 20–25 टन सड़ी हुई गोबर की खाद प्रति हेक्टेयर मिलायें।
- 60 किग्रा नाइट्रोजन (N), 40 किग्रा फॉस्फोरस (P_2O_5) तथा 40 किग्रा पोटाश (K_2O) प्रति हेक्टेयर दें।
- फॉस्फोरस एवं पोटाश की पूरी मात्रा तथा नाइट्रोजन की आधी मात्रा रोपाई के समय दें।
- नाइट्रोजन की शेष आधी मात्रा रोपाई के 30–45 दिन बाद टॉप ड्रेसिंग के रूप में दें।
- संतुलित उर्वरक प्रयोग से पौधों की वृद्धि एवं फूल उत्पादन अच्छा होता है।

सिंचाई

- रोपाई के तुरंत बाद हल्की सिंचाई करें।
- गर्मियों में 5–7 दिन के अंतराल पर सिंचाई करें।
- सर्दियों में 10–15 दिन के अंतराल पर सिंचाई करें।
- वर्षा ऋतु में आवश्यकता अनुसार ही सिंचाई करें।
- खेत में जलभराव न होने दें, क्योंकि इससे पौधों की वृद्धि प्रभावित होती है।
- नियमित सिंचाई से पौधों की अच्छी वृद्धि एवं अधिक फूल प्राप्त होते हैं।

अन्य देखरेख

- खेत को खरपतवार मुक्त रखने के लिए समय-समय पर निराई-गुड़ाई करें।
- मिट्टी को भुरभुरी बनाए रखने के लिए हल्की गुड़ाई करते रहें।
- सूखी, रोगग्रस्त एवं क्षतिग्रस्त शाखाओं को हटाते रहें।
- पौधों की अच्छी वृद्धि के लिए आवश्यकतानुसार टॉप ड्रेसिंग करें।
- कीट एवं रोगों की नियमित निगरानी करें और आवश्यकता अनुसार नियंत्रण करें।
- खेत में उचित नमी बनाए रखें तथा जलभराव से बचायें।
- पौधों के आसपास सफाई बनाये रखें।

फूल तोड़ने का समय

- फूलों को पूरी तरह खिलने पर तोड़ा जाता है।
- फूल तोड़ने का सबसे अच्छा समय सुबह या शाम का होता है।
- नियमित रूप से फूल तोड़ने से नए फूलों का उत्पादन बढ़ता है।
- ताजे और स्वस्थ फूलों की तुड़ाई करनी चाहिए।
- कटे हुए फूलों को छायादार स्थान पर रखना चाहिए ताकि उनकी गुणवत्ता बनी रहे।

प्रमुख कीट

कॉसेंड्रा के पौधों में प्रमुख कीट के रूप में एफिड थ्रिप्स तथा लाल मकड़ी है, जो इसके फूलो और पत्तियों को नुकसान पहुंचते है।

कीट नियंत्रण

- एफिड, थ्रिप्स तथा लाल मकड़ी के नियंत्रण के लिए इमिडाक्लोप्रिड 17.8 SL @ 0.3 मिली/लीटर पानी या डाइमेथोएट 30 EC @ 2 मिली/लीटर पानी का छिड़काव करें।
- कीटों के अधिक प्रकोप पर 10–15 दिन के अंतराल पर पुनः छिड़काव करें।
- खेत को खरपतवार मुक्त रखें तथा पौधों की नियमित निगरानी करें।

प्रमुख बीमारियाँ

कॉसेंड्रा के पौधे में मुख्य रूप से फंगस कवक और मिटटी के कीड़ो से जुडी बीमारियाँ होती है। इनमे शामिल है, ये रोग पौधे की वृद्धि रोकते है, और फूल ख़राब कर देते है।

रोग नियंत्रण

- पत्ती धब्बा रोग के नियंत्रण के लिए मैनकोजेब 75 WP @ 2–2.5 ग्राम/लीटर पानी का छिड़काव करें।
- जड़ गलन एवं मुरझान रोग से बचाव के लिए खेत में जलभराव न होने दें।
- रोगग्रस्त पौधों को उखाड़कर नष्ट कर दें।
- आवश्यकता होने पर कार्बेन्डाजिम 50 WP @ 1 ग्राम/लीटर पानी का छिड़काव या ड्रेंचिंग करें।

- स्वच्छ खेती अपनाएं तथा स्वस्थ पौध सामग्री का उपयोग करें।

उपज

क्रॉसेंड्रा की उपज किस्म, जलवायु तथा प्रबंधन पर निर्भर करती है। सामान्यतः अच्छी देखभाल करने पर 8 से 12 टन फूल प्रति हेक्टेयर प्रति वर्ष प्राप्त होते हैं। कुछ उन्नत किस्मों से इससे अधिक उपज भी मिल सकती है।

निष्कर्ष

कोकेदामा जापान की एक पारंपरिक एवं आकर्षक बागवानी तकनीक है, जिसमें पौधों को गमले के स्थान पर काई (Moss) से ढकी मिट्टी की गेंद में उगाया जाता है। यह तकनीक कम स्थान में हरित सजावट का प्रभावी, पर्यावरण-अनुकूल एवं सौंदर्यपूर्ण विकल्प प्रदान करती है। उचित पौधों का चयन, नियमित सिंचाई, पर्याप्त आर्द्रता तथा समय-समय पर देखभाल करने से कोकेदामा में उगाए गए पौधे लंबे समय तक स्वस्थ एवं आकर्षक बने रहते हैं। वर्तमान समय में शहरीकरण, सीमित स्थान तथा इनडोर गार्डनिंग की बढ़ती लोकप्रियता के कारण कोकेदामा का उपयोग घरों, कार्यालयों, होटलों तथा व्यावसायिक स्थलों की सजावट में तेजी से बढ़ रहा है। इसलिए कोकेदामा आधुनिक फ्लोरीकल्चर एवं इंटीरियर लैंडस्केपिंग के लिए एक सरल, टिकाऊ और कलात्मक तकनीक के रूप में अत्यंत उपयोगी सिद्ध हो रही है।

ISSN No. 2583-3316

प्रमुख सब्जियों के रोग एवं उनका प्रबंधन

सुनील कुमार*, प्रद्युम्न कुमार सिंह, शोभित यादव, आर्यन सिंह एवं अशोक कुमार

पादप सुरक्षा विभाग, बाँदा कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, बाँदा, उत्तर प्रदेश

पत्राचारकर्ता: sksunilphd@gmail.com

परिचय

सब्जियों में होने वाली बीमारियाँ ऐसी असामान्य शारीरिक स्थितियाँ हैं, जो जैविक कारकों (जैसे फंगस, बैक्टीरिया, वायरस और सूतर्कृमि जैसे जीवित जीव) या अजैविक कारकों (जैसे पोषक तत्वों की कमी, सूखा या बहुत ज्यादा तापमान जैसी पर्यावरणीय स्थितियाँ) के कारण होती हैं। ये बीमारियाँ पौधों की सामान्य बढ़त में रुकावट डालती हैं, जिससे पत्तियों, तनों, जड़ों या फलों पर साफ लक्षण दिखाई देते हैं। ये बीमारियाँ सब्जियों की पैदावार और गुणवत्ता पर भी असर डालती हैं। इस लेख में हम सब्जियों की मुख्य बीमारियों और उनके असरदार प्रबंधन के तरीकों के बारे में चर्चा करेंगे।

टमाटर

प्रमुख रोग

क. आद्र गलन

शुरूआत में इस रोग के लक्षण नर्सरी में कुछ जगहों पर दिखाई पड़ते हैं परन्तु 2-3 दिनों में ही पूरी नर्सरी में फैलकर सभी पौधे संक्रमित हो जाते हैं। पौधे अचानक ही मुर्झा जाते हैं और जमीन पर गिरकर नष्ट हो जाते हैं। संक्रमित पौधे भूरे जल अवशोषित विक्षप्ति के साथ पीले गहरे रंग के दिखाई देते है।

ख. अगेती झुलसा

टमाटर की फसल में यह रोग अल्टरनेरिया सोलेनाई नामक कवक से होता है। प्रभावित पौधों की पत्तियों पर छोटे काले रंग के धब्बे दिखाई पड़ते हैं, जो बड़े होकर गोल छल्लेनुमा धब्बों में परिवर्तित हो जाते हैं। फल पर धब्बे शुष्क धंसे हुए और गहरे होते हैं। यह रोग पौधे के सभी भागों में लग सकता है। इस रोग से ग्रसित पौधों की पत्तियों के किनारे के भाग पर छोटे काले गोलाकार धब्बे होते हैं, जो धीरे-धीरे बढ़ते जाते है। इन काले धब्बों के बाहरी किनारे पीलापन लिए होते है। जब धब्बे बढ़ते हैं तब संक्रमित पत्तियाँ मुरझाकर गिर जाती है। इस रोग का प्रकोप पौधे के सभी भागों पर प्रकट होते है। पत्ती झुलसा का प्रकोप सामान्तया निचली व पुरानी पत्तियों से होकर पौधे के ऊपरी भाग तक बढ़ता है। इस रोग के कारण सीधे तड़र पर फलों में संक्रमण और परोक्ष रूप से पौधे की ओजता में कमी के रूप में होता है। पत्तियों के ग्रसित होने पर फलों में सूर्य तपन संक्रमण भी होता है।

ग. पछेती झुलसा

जब लंबे समय के लिए सुहावने मौसम के साथ नमी वाली परिस्थितियाँ बनी रहती हैं तब पछेती अंगमारी रोग का प्रकोप होता है। तेजी से फैलते रोग के कारण गंभीर आर्थिक नुकसान होता है। इसमें पौधे के किसी भी भाग पर भूरे-बैंगनी अथवा काले रंग के धब्बे दिखाई पड़ते हैं। पत्तियों पर दिखाई देने वाले धब्बे अनियमित, थोड़े बड़े, हरे-काले रंग के तथा जल का अवशोषण करने वाले होते हैं। ये धब्बे तेजी से बढ़कर भूरे हो जाते हैं और पत्तियों की निचली सतह के संक्रमित क्षत्र के किनारों के समीप अथवा तने पर एक सफेद फफूँदी का विकास कर लेते हैं। यहाँ तक कि फलों के डंठल भी संक्रमित होकर काले पड़ जाते हैं।

घ. उकटा रोग

टमाटर फसल में यह रोग *फ्यूजेरियम ओक्सीस्पोरम लाइकोपर्सिकी* नामक कवक से होता है। इसमें रोगी पौधे की निचली पत्तियाँ पीली पड़कर झुलस जाती है। पौधे मुरझा जाते हैं। पौधों की बढ़वार रूक जाती हैं व फल भी नहीं लगते हैं। मुख्य तने के संवहन तंतु के साथ भूरी धारियाँ देखी जा सकती हैं।

ङ. पर्ण कुंचन रोग

यह रोग टमाटर फसल में पर्ण कुंचन विषाणु द्वारा होता है और सफेद मक्खी के द्वारा फैलाया जाता है। इस रोग से ग्रसित पौधों में पत्तियाँ मुड़ जाती हैं और फूल व फल छोटे तथा कम संख्या में लगते हैं। इस रोग से ग्रसित पौधों में टहनियों का आकार छोटा होने से पौधे भी छोटे हो जाते हैं। पुरानी पत्तियों के किनारे मोटे और अन्दर की ओर मुड़े हुए दिखाई पड़ते हैं।

च. चक्षु सड़न रोग

यह रोग टमाटर के कच्चे फलों में पहले दिखता है। फलों पर पहले छोटे काले धब्बे दिखाई पड़ते हैं, जो कि धीरे-धीरे बड़े हो जाते हैं। इस रोग का एक मुख्य लक्षण है कि फल के ग्रसित भाग के चारों ओर गोल-गोल हल्की भूरी रंग की वलय बन जाती है।

छ. मूल ग्रन्थि रोग

टमाटर फसल में यह रोग सूत्रकृमि मेलाडोगायनी जावानिका से होता है। इसमें पौधों की जड़ों में गाँठे बन जाती है। भूमि में सूत्रक्रमि की संख्या अधिक होने पर पौधों के ऊपरी भाग पर लक्षण दिखाई देते हैं, जैसे- पीलापन, मुरझाना और बढ़वार रूकना आदि।

ज. जीवाणुज धब्बा

पत्ती पर पानी से भीगे धब्बे हरित पीले रंग के आवरण के साथ दिखाई देते हैं। बाद में ये धब्बे भूरे रंग व विकृत रूप के दिखाई देते हैं। पके हुए फलों पर ये धब्बे गहरे पानी से भीगे हुए भूरे रंग से काले भूरे रंग के दिखाई देते हैं व बाद में इन धब्बों पर दरारें विकसित हो जाती हैं।

प्रबंधन

नर्सरी अवस्था

- आद्र गलन रोग की रोकथाम के लिए अच्छी जल निकासी की व्यवस्था करें, इसके लिए जमीन से 10 सेंमी ऊँची क्यारी बनाकर ही नर्सरी तैयार करें।
- नर्सरी की बुवाई से पहले मिट्टी को 0.45 मिमी मोटी पॉलीथिन की शीट से 2-3 सप्ताह तक ढँककर मिट्टी का सूर्य तापीकरण करें। ऐसा करने से मृदाजनित रोगों के नियंत्रण में सहायता मिलती है। ध्यान रहे इस दौरान मिट्टी में पर्याप्त नमी बनी रहे।
- विश्वसनीय स्रोत से प्राप्त 50 ग्राम ट्राइकोडर्मा की सक्षम स्ट्रेन (कॉलोनी इकाइयों के गठन/CFU 2×10^9/ग्राम) को 3 किलोग्राम गोबर की खाद में मिलायें और 7-14 दिनों के लिए संवर्धन के लिए छोड़ दें व उसके पश्चात 3 वर्ग मीटर क्यारी में *ट्राईकोडर्मा* संवर्धित खाद को मिट्टी में मिला दें।
- सफेद मक्खी जैसे रोगवाहकों के नियंत्रण के लिए मलमल जाली (40 गेज) का इस्तेमाल करें।
- कैप्टान 75 डब्ल्यू पी के साथ (0.25 प्रतिशत) की दर से बीजोपचार करें। आवश्यकता होने पर कैप्टान 70 डब्ल्यू पी 0.25 प्रतिशत की दर से मिट्टी में मिला दें।
- टमाटर नर्सरी से 20 दिन पूर्व अलग से गेंदा की पौध तैयार करें।

मुख्य फसल के दौरान

- रोगों के फैलने की संभावना को कम करने के लिए टमाटर की किस्मों के लिए पंक्ति से पंक्ति व पौधे से पौधे की दूरी 60,45 सेंमी तथा संकर किस्मों के लिए 90, 60 सेंमी की दूरी रखें।
- पर्ण कुंचन संक्रमित पौधों को नियमित रूप से एकत्रित कर नष्ट कर दें।
- अगेती एवं पछेती झुलसा के नियंत्रण हेतु मेन्कोजेब 75 डब्ल्यूपी 1.5-2.0 किग्रा प्रति/हे/की दर से 750-1,000 लीटर पानी के साथ सुरक्षात्मक छिड़काव करें और आवश्यकतानुसार एजोक्सीस्ट्रोबिन 23 प्रतिशत एससी का 500 मिली प्रति हे0 की दर से 500 लीटर पानी के साथ छिड़काव करें। बक अक्षु सड़न के प्रकोप को कम करने के लिए टमाटर के पौधों में डंडे लगाकर उनको सहारा दें।
- बैक्टीरियल सूखा रोग के नियंत्रण हेतु पौध पर स्ट्रैप्टोसायक्लीन (40-100 पीपीएम) घोल का छिड़काव खेत में करें।

फूलगोभी/बंदगोभी

क. डैम्पिंग आफ

इस शब्द का उपयोग नर्सरी अवस्था में विभिन्न फँफूदियों द्वारा बीज और उभरती हुई पौधों को होने वाली क्षति का वर्णन करने के लिए किया जाता है। क्षति के परिणामस्वरूप फसल में पौधों की संख्या कम हो जाती है तथा कभी-कभी क्षति इतनी गंभीर होती है कि फसल की पुनः बुवाई अपरिहार्य हो जाती है। इसके प्रमुख लक्षण हैं पौध का न उभरना जिसके परिणामस्वरूप बीज या पौधे सड़ जाते हैं अथवा नई उगी हुई पौध अचानक मर जाती हैं। नई उभरने वाली पौधों की जड़ें तथा निचले तने मुलायम और जल युक्त हो जाते हैं तथा इनका रंग हल्की लालिमा लिए हुए भूरा होता है।

ख. मृदुरोमिल फँफूद

यह रोग सामान्यतः फसल की नर्सरी अवस्था में होता है, जबकि मुख्य खेत में अपेक्षाकृत इसका प्रकोप कम होता है। इस रोग का प्रमुख लक्षण, है पत्तियों की निचली सतह पर बैंगनीपन लिए हुए भूरे रंग के धब्बे पत्ती की निचली सतह पर सामान्यतः सफेद-धूसर, मृदुरोमिल बढ़वार दिखाई देती है, आगे चलकर पत्ती कागज के सामान होकर सुख जाती है। वर्षा जितनी अधिक होगी या ओस जितनी अधिक पड़ेगी फसल को उतनी ही अधिक गंभीर क्षति होगी। परिपक्व बंद गोभी पर

मृदुरोमिल फँफूद गोभियों पर गहरे धब्बे के रूप में दिखाई देती है।

ग. अल्टरनेरिया पत्ती धब्बा रोग

यह बरसात के मौसम में फूलगोभी/बंदगोभी का सर्वाधिक सामान्यकवकीय रोग है। पत्तियों पर छोटे व पीले रंग के धब्बेदार क्षेत्र दिखाई देते हैं। इन क्षेत्रों के बढ़ने पर गहरे रंग के धब्बों के साथ वलयाकार वृत्त भी बन जाते हैं। नम मौसम में इस फँफूद के कारण हल्के नीले रंग की बढवार होती है, जो उपरोक्त धब्बों के बीचों-बीच बन जाती है। पुरानी पत्तियां इस रोग के प्रति अधिक संवेदनशील होती हैं। कवकीय संक्रमण के परिणामस्वरूप फूलगोभी के शीर्ष पर भूरे रंग की विरंजकता उत्पन्न होती है। जब तापमान 25-30 डिग्री सेल्सियस के बीच होता है तो, ऐसे गर्म मौसम में रोग का प्रकोप बढ जाता है।

घ. जीवाण्विक काला सड़न रोग

यह रोग बंदगोभी की तुलना में फूलगोभी में अधिक गंभीर होता है। फसल बढवार की किसी भी अवस्था में पौधे इस रोग से संक्रमित हो सकते हैं। संक्रमण होने पर पौधों की निचली पत्तियाँ गिर जाती हैं और सूख भी सकती हैं। विकसित पौधों में संक्रमण कोरों पर जल बिजाणुओं के माध्यम से होता है। ऊतक पीले पड़ जाते हैं तथा हरिमाहीनता (क्लोरोसिस) केन्द्र की ओर बढती है जिससे पत्ती पर 'वी' की आकृति का एक मुरझाया हुआ गड्ढा बन जाता हैं। गहन रूप से संक्रमित पत्तियाँ झड़ जाती हैं। रोग के प्रकोप से गोभियों का बनना प्रभावित होता है तथा संक्रमित पौधों के गोभियों का आकार छोटा रह जाता है व गुणवत्ता घट जाती है। यदि रोग फसल की पछेती अवस्था में लगता है तो गोभियाँ सड़ भी जाती हैं।

प्रबंधन

बीज/नर्सरी अवस्था

- अच्छी जल निकासी हेतु एवं 'डैंपिंग ऑफ' आदि से बचने के लिए जमीन की सतह से लगभग 10 सेंमी ऊपर उठी हुई क्यारी तैयार करें।
- नर्सरी की बुवाई से पहले मिट्टी को 0.45 मिमी मोटी पॉलीथीन शीट से 2-3 सप्ताह तक ढ़ककर मिट्टी का सूर्य तापीकरण करें। क्यारी की मिट्टी को 50 ग्रा0 प्रति वर्ग मीटर नीम की खली से उपचारित करें।
- सड़न रोग से बचाव हेतु बीज को *ट्राईकोडर्मा* के प्रभावी स्ट्रेन से 4 ग्रा/ प्रति किग्रा बीज से उपचार करें। *ट्राईकोडर्मा* 10 ग्राम प्रति ली. की दर से पानी मिलाकर इस घोल में पौध को 30 मिनट डुबायें ताकि सड़न रोग से बचाव किया जा सके।
- नर्सरी के दौरान रोगों के नियंत्रण हेतु *ट्राईकोडर्मा* की 250 ग्राम मात्रा को 3 किग्रा गोबर की सड़ी हुई बारीक खाद में अच्छी प्रकार मिलाकर एक सप्ताह के लिए छोड़ दें। बाद में 3 वर्ग मीटर क्यारी में मिट्टी में अच्छी प्रकार मिला दें।
- डैम्पिंग ऑफ के नियंत्रण के लिए कैप्टन 75 डब्ल्यूपी 0.25 प्रतिशत अथवा कैप्टन 75 डब्ल्यूएस 0.2 से 0.3 प्रतिशत की दर से प्रयोग करें।

मुख्य फसल

- रोगों के फैलाव को कम करने के लिए पंक्ति से पंक्ति व पौधे से पौधे की दूरी 60×45 सेंमी रखें।
- मृदुरोमिल फँफूद के लिए 2.5 ग्रा प्रति ली. जल की दर से मेन्कोजेंब, 75 डब्ल्यूपी या मेटालेक्सिल, मेन्कोजेंब, 35 एससी का छिड़काव करें।
- आल्टर्नेरिया पत्ती धब्बा के लिए मेन्कोजेब 75 डब्ल्यूपी अथवा जिनेब 75 डब्ल्यूपी का 1.5-2.0 किग्रा प्रति हे0 की दर से 750-1,000 लीटर पानी के साथ छिड़काव करें। संक्रमित पत्तियों को पौधों से तोड़कर हटा देना प्रभावी होता है।
- फूलगोभी की पछेती फसल में चेपा के नियंत्रण के लिए 75 ग्रा/प्रति हे की दर से एसिटामाईप्रिड 20 ईसी या डाय मिथयोएट 30 ईसी का 650 मिली प्रति/ हे की दर से 500-1,000 लीटर पानी के साथ छिड़काव करें।

आलू

आलू सब्जियों की मुख्य फसल है। इसकी खेती भारत मे प्रमुख फसल के रूप से ली जाती है परन्तु रोगों के कारण इसकी खेती प्रभावित हो रही हैं। किसानो को 60-70 प्रतिशत तक नुकसान उठाना पड़ रहा है। इस तरह के नुकसान से बचने के लिए की किसानों को आलू के प्रमुख रोगों एवं उनके उचित प्रबंधन की जानकारी आवश्यक है इस लेख का प्रमुख उद्देश्य किसानों को आलू के प्रमुख रोगों के लक्षणों कि जानकारी देना हैं, ताकी वे उसे पहचान कर उस रोग का उचित प्रबंधन कर सकें।

क. अगेती अंगमारी या अर्ली ब्लाइट

यह रोंग फफूँद की वजह से होता है। इस रोग के प्रमुख लक्षण नीचे की पत्तियों पर हल्के भरे रंग के छोटे-छोटे पूरी तरह बिखरे हुए धब्बों से होता हैं, जो अनुकूल मौसम पाकर पत्तियों पर फैलने लगते है, जिससे पत्तियाँ नष्ट हो जाती हैं। इस बीमारी के लक्षण आलू मे भी दिखते हैं। भूरे रंग के धब्बें,

जो बाद मे फैल जाते हैं, जिससे आलू खाने योग्य नही रहता है।

ख. आलू का पछेती अंगमारी

यह रोग फफूँद की वजह से होता है। रोग के लक्षण सबसे पहले नीचे की पत्तियों पर हल्कें हरे रंग के धब्बें दिखाई देतें है, जो जल्द ही भूरे रंग के हो जाते हैं। यह धब्बे अनियमित आकार के बनते हैं, जो अनुकूल मौसम पाकर बड़ी तीव्रता से फैलते हैं और पत्तियों को नष्ट कर देते हैं। रोग की विशेष पहचान पत्तियों के किनारे और चोटी भाग का भूरा होकर झुलस जाना हैं। इस रोग के लक्षण कंदो पर भी दिखाई पड़ता है, जिससे उनका विगलन होने लगता है।

ग. आलू मे भूरा विगलन रोग एवं जीवाणु म्लानि रोग

यह जीवाणु जनित रोग है। रोग ग्रसित पौधे सामान्य पौधों से बौने होते है, जो कुछ ही समय मे हरे के हरे ही मुरझा जाते हैं। प्रभावित पौधों की जड़ों को काटकर काँच के गिलास मे साफ पानी में रखने से जीवाणु रिसाव स्पष्ट देखा जा सकता है। अगर इन पौधों मे कंद बनता है तो काटने पर एक भूरा घेरा देखा जा सकता है।

घ. आलू की फसल का काला मस्सा रोग

यह रोग फफूँद की वजह से होता है। इस रोग के प्रमुख लक्षण पौधों के कंदो पर पर दिखाई पड़ता है, जिसमें भूरे से काले रंग के मस्सो की तरह उभार दिखाई देते है, जिससे कंद खाने योग्य नही रह जाता है।

प्रबंधन

- प्रमाणित बीज का प्रयोग किया जाना चाहिए।
- बुवाई के पूर्व खोद के लिकाले गए रोगी कंदो को जलाकर नष्ट कर देना चाहिए।
- प्रतिरोधक प्रजातियों का प्रयोग किया जाना चाहिए।

ङ. आलू में सामान्य स्कैब या स्कैब रोग

रोग जीवाणु की वजह से होता है। इस रोग के प्रमुख लक्षण पौधो कंदों पर पर दिखाई पड़ता है। कंदों में हल्के भूरे रंग के दिखई फोड़े के समान स्केब पड़ते हैं, जो कि कुछ उभरे और कुछ गहरे स्केब दिखाई पड़ते है, जिसके कारण कंद खाने योग्य नही रह जाते हैं।

प्रबंधन

- प्रमाणित बीज का प्रयोग किया जाना चाहिए।
- बुवाई से पूर्व खेत की सफाई कर पौंधों के अवशेषों को एकत्र कर जला देना चाहिए।
- *फाइटोलान, ब्लिटाक्स*- 50 का 0.3 प्रतिशत 12 से 15 दिन के अन्तराल में 3 बार छिड़काव करना चाहिए।
- बुवाई के पूर्व खोद के लिकाले गए रोगी कंदो को जलाकर नष्ट कर देना चाहिए।
- रोग प्रतिरोधी प्रजातियों का चयन किया जाना चाहिए जैसे कुफरी अंलकार, कुफरी खासी गोरी, कुफरी ज्योती, आदि।
- बोर्डो मिश्रण 4:4:50 *कॉपर ऑक्सी क्लोराइड* का 0.3 प्रतिशत का छिड़काव 12-15 दिन के अन्तराल मे तीन बार किया जाना चाहिए।
- बुवाई से पहले खेत की मिट्टी और बीजों को *ट्राइकोडर्मा* से उपचारित करें। यह जड़ सड़न और उकठा रोग को रोकता है।
- गृष्मकालीन गहरी जुताई किया जाना चाहिए।
- कंद लगाते समय 4-5 किलो ग्राम प्रति एकड़ की दर से ब्लीचिंग पाउडर उर्वरक के साथ कुंड मे मिलायें।
- रोग दिखई देने पर अमोनियम सल्फेट के रूप मे देना चाहिए, जो रोग जनक पर विपरीत प्रभाव डालते हैं।

बैंगन

क. फोमॉप्सिस झुलसा तथा फल सड़न

यह बैंगन का गंभीर रोग है, जो इसके पौधों की पत्तियों तथा फलों को संक्रमित करता है। पौध पर संक्रमण होने की अवस्था में यह 'डैम्पिंग ऑफ' के लक्षण दर्शाता है। पत्तियों पर यह रोग छोटे गोल धूसर से भूरे रंग के धब्बों के रूप में दिखाई देता हैं। संक्रमित फलों पर छोटे धसे हुए धब्बों के रूप में लक्षण प्रकट होते हैं।

ख. छोटी पत्ती रोग

इसका प्रमुख लक्षण पौधों की पत्तियों का छोटा हो जाना है। पत्तियों का डंठल इतना छोटा होता है कि पत्तियाँ तने से चिपकी हुई दिखाई देती हैं। संक्रमित पौधों की पत्तियाँ संकरी, मुलायम, चिकनी तथा पीले रंग की हो जाती हैं। नव विकसित पत्तियाँ और भी छोटी होती हैं। तने की अन्तरगाँठें भी छोटी पड़ जाती हैं। अग्रस्थ कलिकायें बड़ी हो जाती हैं लेकिन पौधों के पर्णवृन्त तथा पत्तियाँ छोटी ही बनी रहती हैं, जिससे पौधा झाड़ी जैसा दिखाई देता है। ऐसे पौधों पर फलन बहुत कम होता है।

सूत्रकृमि

जड़गाँठ सूत्रकृमि

सर्वाधिक विशेष लक्षण पौधों की जड़ प्रणाली में गाँठों या पुटियों का बनना है। ये पुटियाँ एकल या अनेक होती हैं।

सूत्रकृमि के प्रकोप से पौधों की बढ़वार रुक जाती है। पत्तियों का हरापन गायब हो जाता है और मुरझान के लक्षण दिखाई देते हैं। फलन भी प्रतिकूल रूप से प्रभावित होता है। प्रभावित खेत पर पौधों के धब्बे जैसे दिखाई देते हैं।

प्रबंधन

- जुलाई अगस्त के दौरान सण/ढैंचा का हरी खाद के रूप में प्रयोग करें।
- आद्र गलन आदि को रोकने, तथा अच्छी जल निकासी के लिए जमीन से 10 सेंमी ऊँची क्यारी बनाकर ही नर्सरी तैयार करें।
- जून के महीने में मृदा सौर्यीकरण के लिए 3 सप्ताह तक 45 गेज (0.45 मिमी) मोटी पॉलीथीन की चादर बिछाये, जिससे मृदावाहित कीटों, जीवाणु मुरझान जैसे रोगों तथा सूत्रकृमियों को कम करने में सहायता मिलती है। तथापि यह ध्यान रखना चाहिए कि सौर्यीकरण के लिए मृदा में पर्याप्त नमी मौजूद हो।
- तीन किग्रा घूरे की खाद में 250 ग्रा कवकीय विरोधी *ट्राइकोडर्मा* को मिलाये तथा कल्चर को समृद्ध बनाने के लिए तीन सप्ताह तक ऐसे ही रखा रहने दें। 21 दिनों के पश्चात् इस सामग्री को 3 वर्ग मीटर की क्यारी में मिलाये।
- डैंपिंग आफॅ एवं जड़ गलन के नियंत्रण हेतू *ट्राइकोडर्मा* 1 प्रतिशत के साथ बीजोपचार (5 ग्रा प्रति किग्रा बीज की दर से), नर्सरी उपचार (400 वर्ग मी क्षेत्र का 250 ग्रा/प्रति 50 लीटर पानी की दर से), पौध जड़ उपचार (1 प्रतिशत 15 मिनट तक) करें ओर आवशयकतानुसार *कैप्टान* 75 *डब्लयुपी* से 0.25 प्रतिशत की दर से मृदा उपचार करें।
- छोटी पत्ती रोग से प्रभावित पौधों की छँटाई की जानी चाहिए।
- फोमाप्सिस एवं छोटी पत्ती रोग से संक्रमित पौधों को एकत्रित करके नष्ट करें और खेत को साफ-सुथरा रखें।
- फोमाप्सिस प्रभावित फल और पर्ण धब्बा रोग के नियंत्रण के लिए खेत में *कार्बेन्डाजिम* 50 *डब्ल्यूपी* 300 ग्रा/प्रति हे/600 लीटर पानी के घोल के साथ छिड़काव करें।
- बैंगन की फसल लगातार उगाने से मुर्झान रोग का संक्रमण अधिक होता है। अतः गैर सोलेनेसी प्रजाति की फसलों को अपनाते हुए उचित फसल क्रम का पालन करना चाहिए।

मिर्च/शिमला मिर्च

क. पर्ण चित्ती

पत्तियों पर विक्षति भूरी और वृत्ताकार होती है जिसके बीच में छोटे से बड़े हल्के धूसर रंग के और गहरे भूरे किनारे होते हैं। गंभीर रूप से संक्रमित पत्तियां पकने से पहले ही गिर जाती हैं जिसके परिणामस्वरूप उपज में कमी होती है।

ख. डाई-बैक और एन्थ्रॉक्नोज

रोग के लक्षण अधिकांशतः पके हुए फलों पर दिखाई देते हैं और इसलिए इस रोग को पके हुए फलों का सड़न भी कहा जाता है। चित्तियाँ सामान्यतः वृत्ताकार, जलमग्न और काले किनारे के साथ डूबी हुई होती हैं। जैसे-जैसे रोग बढता है, ये चित्तियाँ फैलती हैं, और इनसे गहरे फलन के साथ निश्चित मार्किंग बनती है। अनेक चित्तियों वाले फल पकने से पहले ही गिर जाते हैं, जिसके परिणामस्वरूप उपज का भारी नुकसान होता है। कवक फल के डंठलों पर भी आक्रमण कर सकते हैं, और तने के साथ-साथ फैल सकते हैं जिससे पश्चमारी के लक्षण बन जाते हैं।

ग. फ्यूजेरियम मुर्झान

यह रोग अधिकांशतः खराब जल निकासी वाली मृदाओं में होता है, पौधे के मुरझाने तथा पत्तियों के ऊपरी तरफ और अंदर की तरफ मुड़ने से फ्यूजेरियम मुरझान का पता चलता है। पत्तियाँ पीली होकर मर जाती हैं। सामान्यतः यह रोग खेत के नीचे वाले पानी रुकने वाले क्षेत्रों में दिखाई देता है और जल्दी ही सिंचाई के साथ पानी की नाली के साथ फैल जाता है। उपरोक्त समय तक जब भूमि के ऊपर लक्षण दिखाई देने लगते हैं तब तक पौधे की संवहनी प्रणाली विशेष रूप से निचले तने और जड़ें भी विरुपित होने लगते हैं।

घ. चूर्णिल फँफूद

यह रोग तीखी मिर्च में बहुत आम रोग है। रोग शुष्क और आर्द्र दोनों प्रकार के मौसम स्थितियों के तहत गर्म जलवायु में पैदा होता है। पत्तियों की ऊपरी सतह पर हरे रंग के माहीन धब्बे दिखाई देने लगते हैं। पत्तियों की निचली सतह पर विक्षतियाँ सफेद से धूसर चूर्णिल बड़ना इसका सबसे प्रमुख लक्षण है।

ङ. विषाणु काम्प्लैक्स

इस विषाणु के कारण पत्तियों का आकार छोटा हो जाता है, जिससे पौधे बौने दिखाई देने लगते हैं। रोग बाड़ी जैसा दिखाई देने लगता है व फूलों का उत्पादन भी कम हो जाता है। विकृत बीजों के साथ फल छोटे आकार के पैदा होतें हैं। गंभीर संक्रमण होने पर फसल का पूरी तरह से नष्ट होना समान्य है।

च. झुलसा

यह शिमला मिर्च का एक क्रियात्मक विकार है, जिसमें फल सूर्य की सीधी किरणें पड़ने के कारण प्रभावित होते हैं। उन पर

सफेद रंग के परिगलित चकते बन जाते हैं साथ ही जो हिस्सा सीधे सूर्य के संपर्क में आता है उसकी उपरी सतह पतली और सूखी और कागज जैसी हो जाती है।

प्रबंधन

- डेम्पिंग ऑफ से बचने के लिए अच्छी निकासी के लिए भूमि स्तर से लगभग 10 सेंमी ऊपर उठी हुई नर्सरी की क्यारियाँ तैयार करें।
- मृदा से पैदा होने वाले नाशीजीवों के लिए मृदा सौर्यीकरण के लिए क्यारियों को 45 गेज (0.45 मिमी) मोटाई की पॉलीथीन शीट से तीन सप्ताह के लिए ढकें। मृदा सौर्यीकरण के दौरान मिट्टी में पर्याप्त नमी होनी चाहिए।
- डेपिंग ऑफ का प्रबंधन करने के लिए विश्वसनीय स्त्रोत से प्राप्त *ट्राईकोडर्मा* से 10 ग्रा/प्रति किग्रा बीज की दर से अथवा *इमिडाक्लोप्रिड 70 डब्ल्यू एस* का 10 ग्रा/प्रति किग्रा बीज की दर से बीजोंपचार करें, जिससे कि प्रारंभिक स्थितियों में ही नाशीजीवों का प्रबंधन किया जा सके।
- रोपाई के समय दस मिनट के लिए पौधों को 5 मिला/प्रति ली की दर से स्यूडोमोनास फ्लोरेसेंस के घोल में डुबोये।
- पर्ण कुंचन रोग/मोजेक काम्प्लैक्स से प्रभावित पौधों की आवधिक रूप से छटाई करते हुए उन्हें नष्ट करना चाहिए।
- फल सड़न और डाई बैक के प्रबंधन हेतु *मेन्कोजेब 75 डब्ल्यूपी* अथवा *प्रोपिनेब 70 डब्ल्यूपी* का 1.5-2.0 किग्रा प्रति हे की दर से 750-1,000 लीटर पानी के साथ या *जिनेब 70 डब्ल्यूपी* का 0.5 प्रतिशत की दर से सुरक्षात्मक छिड़काव व आवश्यकता आधारित *डायफेनकोनाजोल 25 ईसीका* 0.05 प्रतिशत अथवा *मायक्लोब्युटानिल 10 डब्ल्यूपी* का 0.04 प्रतिशत का छिड़काव करें।
- चूर्णिल आसिता और फल सड़न के प्रबंधन के लिए आवश्यकता आधारित *हेक्सकोनाजोल 2 एससी* का 3 ला/प्रति हे/या टेबूक/नाजोल 25.9 प्रतिशत एम/एम ईसी का 500 मिली या एजोक्सीस्ट्रोबिन 11 प्रतिशत + टेबूकोनाजोल 18.3 प्रतिशत *एससी डब्ल्यू/डब्ल्यू* का 600-700 मिली प्रति हे/की दर से 500-700 लीटर पानी के साथ छिड़काव करें।
- डाई-बैक के लिए *स्यूडोमोनास फ्लोरोसेंस* (जैव रासायनिक दवाइयाँ) का सामान्य छिड़काव भी किया जा सकता है। विभिन्न रोगों के लिए स्यूडोमोनास फलोरोसेंस या *ट्राइकोडर्मा* (जैव नाशकनाशीजीव) का सामान्य रूप से छिड़काव किया जा सकता है।
- फ्यूजेरियम मुर्झान प्रबंधन के लिए खेत तैयार करते समय मृदा में घूरे की खाद (250 किग्रा) में विश्वशनीय स्त्रोत से लिए गए *ट्राइकोडर्मा* (5 किग्रा प्रति हे/ को मिला कर प्रयोग करें। यदि मुर्झान प्रतिवर्ष नियमित रूप से होता है तो फसल चक्रण किया जा सकता है।

भिण्डी

क. पीला शिरा चित्ती रोग

पीली नाड़ियों पर विशिष्ट प्रकार के परस्पर जाल में बुने हुए आकार वाले लक्षण दिखाई देते हैं, जिससे पत्तियों पर हरे ऊतकों के अलग-अलग क्षेत्र बन जाते हैं। बाद में पूरी पत्ती पीली पड़ जाती है। पौधों की बढवार रुक जाती है तथा उनका रंग पीलापन लिए हुए हरा हो जाता है। किसी खेत में अधिकांश पौधे रोगग्रस्त हो सकते हैं तथा रोग का संक्रमण पौधों की बढवार की किसी भी अवस्था में आरंभ हो सकता है। संक्रमण से फूलों व फलों का विकसित होना रुक जाता है तथा वे आकार में छोटे, पीले व कठोर हो जाते हैं। यह रोग सफेद मक्खी द्वारा फैलता है तथा आर्थिक दृष्टि से भिण्डी का सबसे महत्वपूर्ण रोग है। कभी-कभी इससे फसल को 80 प्रतिशत से अधिक हानि होती है।

ख. चूर्णिल फंफूँद

संक्रमित पौधे की पत्तियों की निचली सतह पर आटे के समान सफेद धब्बे दिखाई देते हैं, जो आगे चलकर पत्ती की दोनों सतहों पर फैल जाते हैं। आरंभ में पत्तियों पर सफेद ऊपरी धब्बे दिखाई देते हैं लेकिन बाद में पूरी सतह सफेद पदार्थ से ा जाती हैं। गहन संक्रमण के परिणामस्वरूप पत्तियाँ ऊपर की ओर मुड़कर क्षतिग्रस्त हो जाती हैं। इस रोग के कारण अधिकांश पत्तियाँ पौधों से टूटकर गिर सकती हैं।

ग. सूत्रकृमि जड़गाँठ

द्वितीय अवस्था वाले लार्वे जड़ों में प्रवेश करके पौधे को संक्रमित करते हैं। यहाँ ये भरण करते हुए विमोचित (माउल्ट) होने के पश्चात् वयस्क अवस्था में पहुँचते हैं। ये जड़ों को बहुत तेजी से खाते हैं और उन पर विशेष प्रकार की गाँठें या पुटियाँ बना देते हैं। ये पुटियाँ एकल अथवा समूहों में हो सकती हैं और पूरी जड़ों पर व्यापक रूप से फैल जाती हैं। प्रभावित पौधे निर्बल होते हैं, उनकी बढवार रुक जाती है तथा पत्तियां पीली पड़ जाती हैं। फसल की उपज बहुत कम हो जाती है।

प्रबंधन

- पीला शिरा चित्ती रोग प्रतिरोधी किस्मों की बुवाई करें।
- *ट्राइकोडर्मा* से 4 ग्रा प्रति किग्रा बीज की दर से बीजोपचार

करें।

- चूर्णिल आसिता के नियंत्रण के लिए अजादीरेक्टिन आधारित नीम तेल 0.03 प्रतिशत का 2-2.25 लीटर प्रति हे/ 500 लीटर पानी के साथ या सल्फर 80 डब्ल्यूपी 3.13 किग्रा प्रति हे की दर से 1,000 लीटर पानी के साथ छिड़काव करें।
- प्रभावित प्ररोहों को खेत से हटाकर नष्ट करें।
- समय-समय पर पीली शिरा चित्ती विषाणु रोग से प्रभावित पौधों को खेत से हटायें व फसल की कटाई के पश्चात खेत की गहरी जुताई करें। फसल अपशिष्टों, भिण्डी के पौधों के ठूँठों को खेत से हटाकर नष्ट करना।
- सफेद मक्खी को प्रारंभिक अवस्था में रोकने के लिए 7 माइक्रो मोटाई के स्लेटी काले रंग पारदर्शी मल्चिस का प्रयोग करें।

प्याज

क. स्टेमफाइलीयम झुलसा

यह रोग उत्तरी और पूर्वी भारत में प्याज के पत्तों पर बहुत ही सामान्य हैं। रोग तीव्रता रबी फसल में 5 से 50 प्रतिशत तक होती हैं। संक्रमण देर मार्च और जल्दी-अप्रैल के दौरान होता है, लघु, पीली से नारंगी रंग के धब्बे या धारियाँ के पत्तियों या डंठल के बीच एक तरफ विकसित होते हैं। धब्बे अक्सर मिल कर बड़े धब्बों में बदल कर परतों पर झुलसा पैदा करते हैं।

ख. बैंगनी ब्लाच

रोग पत्तियों पर छोटे, सफेद, धसे घावों के रूप में प्रकट होता है। ये धब्बे बाद में बड़े होकर और अंततः पूरी पत्ती को घेर लेते हैं। बाद में अंडाकार आकार के काले क्षेत्र पतियों की सतह पर दिखाई देते हैं, विषेशता बैंगनी रंग को बनाए रखते हैं। पत्तियां और तने धीरे-धीरे गिर जाते हैं। गाढ़े क्षेत्र घावों के भीतर विकसित हो सकते हैं।

ग. सूत्रकृमि चावल जड़गाँठ सूत्रकृमि

आम तौर पर युवा पौधों में संक्रमित होता है, जिसके परिणाम स्वरूप पूरी फसल का विनाश हो सकता हैं। सूत्रकृमि द्वारा संक्रमण से जड़ों में असामान्य सुजन होती है जिसे जड़गाँठ या घाव के रूप में जाना जाता हैं, जिससे पीलापन, सूखना एवं पौधों की वृद्धि रूकना होती हैं।

प्रबंधन

पानी की अच्छी निकासी के साथ व धान की भूसी की राख के साथ जमीनी सतह से 10 सेमी ऊपर तक नर्सरी की क्यारी बनायें। जनवरी-फरवरी के दौरान असंभावित वर्षा के कारण होने वाले पीलेपन को कम करने के लिए यूरिया का 0.2 प्रतिशत से आवश्यकता आधारित छिड़काव करें। पौध की क्यारी में गोबर की खाद/वर्मीकम्पोस्ट से संवर्धित *ट्राइकोडर्मा* 50 ग्रा प्रति 3 सेमी की दर से मिलाये।

मुख्य फसल

- रोपाई से पहले *स्यूडोमोनास फ्लुओरिसेन्स* के 5 मिली प्रति लीटर घोल में पौध को डुबायें।
- भली प्रकार सड़ी हुई गोबर की खाद को 2.5 ग्राम *ट्राइकोडर्मा हरजीयानम* प्रति 10 वर्ग मीटर के हिसाब से मिलायें।
- सल्फर की कमी दूर करने के लिए आवश्यकता आधारित *सल्फर 80 डब्ल्यूपी* का 0.2 प्रतिशत की दर से प्रयोग करें।
- नीम की खली को सूत्रकृमि प्रबन्धन के लिये 250 किलो प्रति हेक्टेयर के हिसाब से डालें।
- डाऊनी मिल्ड्यू व ब्लाईट से बचाव के लिए *जिनेब 75 डब्ल्यूपी* का 1.5-2.0 किग्रा प्रति हे/ की दर से 750-1,000 लीटर पानी के साथ आवश्यकता आधारित छिडकाव करें।
- बैंगनी ब्लाच के नियंत्रण के लिए डाईफेन्कोनाजोल का 0.1 प्रतिशत, *टेबूकोनाजोल* 25.9 प्रतिशत *एम/एम ईसी* का 625-750 मिली प्रति हे/ की दर से 500 लीटर पानी के घोल में आवश्यकता आधारित छिड़काव करें।

निष्कर्ष

दिए गए लेख में टमाटर की फसल को प्रभावित करने वाली मुख्य फंगल बीमारियों के बारे में बताया गया है। डैम्पिंग ऑफ, अर्ली ब्लाइट, लेट ब्लाइट और फ्यूसेरियम विल्ट। हरबी मारी के अलग-अलग लक्षण होते हैं और ये फसल की पैदावार के लिए अलग-अलग विकास चरणों में गंभीर खतरा पैदा करती हैं। नर्सरी में डैम्पिंग ऑफ छोटे पौधों (सीडलिंग) पर हमला करती है और कुछ ही दिनों में पूरी नर्सरी को खत्म कर देती है। अर्ली ब्लाइट पुरानी पत्तियों पर 'टारगेट-बोर्ड' जैसे धब्बों के साथ शुरू होती है और फलों की गुणवत्ता खराब करती है, जबकि लेट ब्लाइट नमी वाले मौसम में तेजी से फैलती है, जिससे पत्तियां, तने और फलों के डंठल तेजी से और बुरी तरह सड़ने लगते हैं। फ्यूसेरियम विल्ट पौधे के अंदर हमला करती है, जिससे विकास रुक जाता है और पौधा हमेशा के लिए मुरझा जाता है।

❖❖

ISSN No. 2583-3316

वर्षा जल संचयन जल संकट के समाधान हेतु एक सतत् एवं प्रभावी प्रबंधन तकनीक

मोनिका कांत* एवं विवेक विश्वकर्मा

पादप रोगविज्ञान विभाग, लिंगों मुदियाल कृषि महाविद्यालय एवं अनुसंधान केंद्र नारायणपुर, छत्तीसगढ़

पत्राचारकर्ता: monikakant7999@gmail.com

परिचय

जल पृथ्वी पर जीवन का आधार है। मानव अस्तित्व, कृषि उत्पादन, औद्योगिक विकास तथा पारिस्थितिक संतुलन सभी जल पर निर्भर करते हैं। पृथ्वी की सतह का लगभग 71 प्रतिशत भाग जल से आच्छादित है, किन्तु इसमें से केवल लगभग 2.5 प्रतिशत जल ही मीठा जल है और उसका भी अधिकांश भाग हिमनदों एवं बर्फ के रूप में विद्यमान है। मानव उपयोग के लिए उपलब्ध जल की मात्रा अत्यंत सीमित है।

संयुक्त राष्ट्र की विभिन्न सूचनाओं के अनुसार विश्व की बड़ी आबादी जल संकट का सामना कर रही है। भारत विश्व का लगभग 18 प्रतिशत जन-संख्या का निवास स्थान है, जबकि उसके पास वैश्विक जल संसाधनों का केवल लगभग 4 प्रतिशत हिस्सा उपलब्ध है। ऐसी स्थिति में जल संरक्षण की प्रभावी रणनीतियाँ अपनाना अत्यंत आवश्यक हो गया है।

वर्षा जलसंचयन एक ऐसी तकनीक है, जो वर्षा से प्राप्त जल को संग्रहित कर भविष्य में उपयोग के लिए सुरक्षित रखती है तथा भू-जलस्तर को पुनर्भरित करने में सहायता प्रदान करती है। यह तकनीक न केवल जलसंरक्षण में सहायक है, बल्कि जल संकट के स्थायी समाधान की दिशा में भी एक महत्वपूर्ण कदम है।

वर्षा जलसंचयन की अवधारणा

वर्षा जलसंचयन (Rainwater Harvesting) वह प्रक्रिया है, जिसके अंतर्गत वर्षा के जल को विभिन्न माध्यमों से एकत्रित करके संग्रहित अथवा भूमि में पुनर्भरित किया जाता है। इसके मुख्य उद्देश्य वर्षा के जल को व्यर्थ बहने से रोकना तथा जल संसाधनों का अधिकतम उपयोग सुनिश्चित करना है।

वर्षा जलसंचयन की प्रक्रिया में सामान्यतः निम्नलिखित घटक शामिल होते हैं:

क. जल ग्रहण क्षेत्र (Catchment Area)
ख. जल संग्रहणनालियाँ (Gutters)
ग. पाइप लाइन व्यवस्था
घ. छनन प्रणाली (Filtration System)
ङ. भंडारण टैंक
च. पुनर्भरण संरचना (Recharge Structure)

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

वर्षा जलसंचयन कोई नई अवधारणा नहीं है। इसका उपयोग प्राचीन सभ्यताओं द्वारा हजारों वर्षों से किया जाता रहा है। भारत में:

- राजस्थान में ‘जोहड़’ एवं ‘टांका’ प्रणाली
- गुजरात में ‘वाव’ (सीढ़ीदार कुआँ)
- तमिलनाडु में ‘एरी’ प्रणाली
- महाराष्ट्र में ‘बांधारा’ प्रणाली

जल संरक्षण के उत्कृष्ट उदाहरण रहे हैं।

प्राचीन भारतीय समाज ने स्थानीय जलवायु और भौगोलिक परिस्थितियों के अनुरूप जलसंचयन प्रणालियाँ विकसित की थीं। आधुनिक तकनीकों ने इन पारंपरिक प्रणालियों को और अधिक प्रभावी बना दिया है।

वर्षा जलसंचयन की प्रमुख विधियाँ

वर्षा जलसंचलन की इस नीति में निम्नलिखित विधिया है इस प्रकार है।

छत आधारित वर्षा जलसंचयन

इस प्रणाली में भवनों की छतों पर गिरने वाले वर्षा जल को

पाइपों द्वारा संग्रहित कर टैंकों में सुरक्षित रखा जाता है।

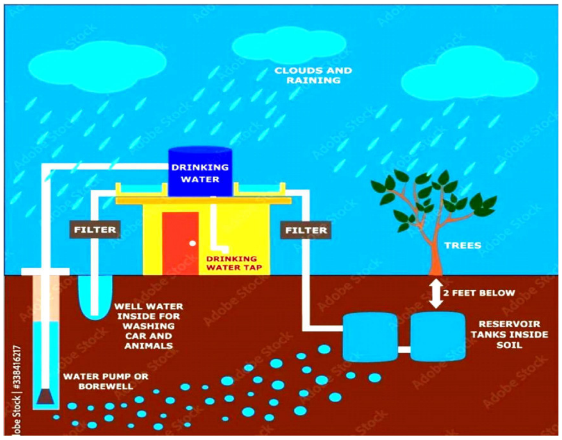

प्रमुख विशेषतायें

- घरेलू उपयोग हेतु उपयुक्त
- कम लागत
- सरल रख रखाव
- शहरी क्षेत्रों के लिए प्रभावी

भू-जल पुनर्भरण प्रणाली

इस प्रणाली में वर्षा जल को विभिन्न संरचनाओं के माध्यम से भूमि के भीतर पहुँचाया जाता है।

प्रमुख संरचनायें

- रिचार्ज कुएँ
- सोख्ता गड्ढे
- परकोलेशन टैंक
- रिचार्ज ट्रेंच
- इंजेक्शन वेल

लाभ

- भू-जल स्तर में वृद्धि
- जल की गुणवत्ता में सुधार
- सूखे की समस्या में कमी

सतही जलसंचयन

इस प्रणाली में वर्षा जल को तालाबों, झीलों, जलाशयों एवं छोटे बाँधों में संग्रहित किया जाता है।

उपयोग

- सिंचाई
- पशु पालन
- मत्स्य पालन
- ग्रामीण जलापूर्ति

वर्षा जलसंचयन का वैज्ञानिक आधार

वर्षा जलसंचयन जल चक्र (Hydrological Cycle) परआधारित है। जब वर्षा होती है, तब जल का एक भाग भूमि में समा जाता है, जबकि शेष भाग सतही प्रवाह के रूप में नदियों एवं समुद्रों की ओर बह जाता है।

यदि इस जल को उचित संरचनाओं के माध्यम से संग्रहित किया जाये तोः

- भू-जलपुनर्भरण बढ़ता है।
- सतही बहाव कम होता है।
- मिट्टी का कटाव घटता है।
- जल उपलब्धता बढ़ती है।

इस प्रकार वर्षा जलसंचयन प्राकृतिक जल चक्र को संतुलित बनाए रखने में सहायक होता है।

वर्षा जलसंचयन का महत्व

जल संकट का समाधान

विश्व के अनेक क्षेत्रों में पेय जल की कमी एक गंभीर समस्या बन चुकी है। वर्षा जलसंचयन जल उपलब्धता बढ़ा कर इस समस्या को कम कर सकता है।

भू-जलस्तर में वृद्धि

अत्यधिक भू-जलदोहन के कारण जलस्तर लगातार गिर रहा है। वर्षा जलसंचयन भू-जलपुनर्भरण का सबसे प्रभावी साधन माना जाता है।

बाढ़ नियंत्रण

शहरी क्षेत्रों में अत्यधिक वर्षा के दौरान जलभराव की समस्या उत्पन्न होती है। वर्षा जलसंचयन अतिरिक्त जल को संग्रहित करके बाढ़ के जोखिम को कम करता है।

ऊर्जा संरक्षण

भू-जल निकालने, शुद्ध करने एवं वितरण करने में ऊर्जा की आवश्यकता होती है। स्थानीय स्तर पर जल उपलब्ध होने से

ऊर्जा की बचत होती है।

पर्यावरण संरक्षण

यह तकनीक प्राकृतिक जल स्रोतों पर दबाव कम करती है तथा पारिस्थितिक संतुलन बनाये रखने में सहायता करती है।

भारत में वर्षा जलसंचयन की आवश्यकता

भारत में जल संकट तेजी से बढ़ रहा है।

प्रमुख कारण

- जनसंख्या वृद्धि
- शहरी करण
- औद्योगी करण
- भू-जल का अत्यधिक दोहन
- अनियमित मानसून
- जल वायु परिवर्तन

केंद्रीय भू-जल बोर्ड (CGWB) के अनुसार भारत के अनेक क्षेत्रों में भू-जलस्तर चिंताजनक गति से गिर रहा है। विशेष रूप से उत्तर-पश्चिम भारत, दिल्ली, हरियाणा, पंजाब तथा राजस्थान के कई क्षेत्रों में जलसंकट गंभीर रूप धारण कर चुका है।

ऐसी स्थिति में वर्षा जलसंचयन एक अनिवार्य आवश्यकता बन गया है।

वर्षा जलसंचयन के सामाजिक एवं आर्थिक लाभ

सामाजिक लाभ

- स्वच्छ जल की उपलब्धता
- ग्रामीण विकास
- जल संघर्षों में कमी
- सामुदायिक सहभागिता में वृद्धि

आर्थिक लाभ

- जल खरीदने की लागत में कमी
- सिंचाई लागत में कमी
- कृषि उत्पादकता में वृद्धि
- जलापूर्ति अवसंरचना पर दबाव में कमी

पर्यावरणीय लाभ

क. भू-जलपुनर्भरण में वृद्धि।

ख. मिट्टी कटाव में कमी।

ग. जैव विविधता संरक्षण।

घ. जल स्रोतों का पुनर्जीवन।

ङ. सूखा प्रबंधन में सहायता।

च. शहरी ताप द्वीप प्रभाव में कमी।

वर्षा जलसंचयन की चुनौतियाँ

यद्यपि यह तकनीक अत्यंत लाभकारी है, फिर भी इसके व्यापक कार्यान्वयन में कुछ बाधायें हैंः

तकनीकी चुनौतियाँ

- उचित डिजाइन का अभाव
- रख रखाव संबंधी समस्यायें

सामाजिक चुनौतियाँ

- जन-जागरूकता की कमी
- सामुदायिक भागी दारी का अभाव

आर्थिक चुनौतियाँ

- प्रारंभिक निवेश
- वित्तीय सहायता की कमी

प्रशासनिक चुनौतियाँ

- प्रभावी नीति क्रियान्वयन का अभाव
- निगरानी व्यवस्था की कमी

सरकारी पहल एवं नीतियाँ

भारत सरकार एवं राज्य सरकारों ने वर्षा जलसंचयन को प्रोत्साहित करने के लिए अनेक योजनाएँ प्रारंभ की हैं।

प्रमुख पहल

- जल शक्ति अभियान
- अटल भू-जल योजना
- मन रेगा के अंतर्गत जल संरक्षण कार्य
- स्मार्ट सिटी मिशन
- अमृत योजना

कई राज्यों में नए भवनों के लिए वर्षा जलसंचयन प्रणाली स्थापित करना अनिवार्य किया गया है।

सतत् विकास लक्ष्यों (SDGs) में योगदान

वर्षा जलसंचयन संयुक्त राष्ट्र के सतत विकास लक्ष्यों की प्राप्ति में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

विशेष रूप सेः

- SDG 6ः स्वच्छ जल एवं स्वच्छता
- SDG 11ः सतत शहर एवं समुदाय
- SDG 13ः जल वायु कार्र-वाई
- SDG 15ः स्थलीय पारिस्थिति की संरक्षण

निष्कर्ष

वर्षा जलसंचय नवर्तमान समय में जल संकट के समाधान हेतु सबसे प्रभावी, किफायती तथा पर्यावरण-अनुकूल तकनीकों में

से एक है। यह न केवल जल संरक्षण को बढ़ावा देता है बल्कि भू-जलस्तर सुधारने, बाढ़ नियंत्रण, पर्यावरण संरक्षण तथा सतत विकास को सुनिश्चित करने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

भारत जैसे देश में, जहाँ जल संसाधनों पर निरंतर दबाव बढ़ रहा है, वर्षा जल संचयन को राष्ट्रीय स्तर पर जन आंदोलन का रूप दिया जाना चाहिये। सरकार, शैक्षणिक संस्थानों, स्थानीय निकायों तथा नागरिकों के संयुक्त प्रयासों से ही जल सुरक्षा के लक्ष्य को प्राप्त किया जा सकता है। भविष्य की पीढ़ियों के लिए जल संरक्षण सुनिश्चित करना हमारी सामूहिक जिम्मेदारी है।

संदर्भ

Central Ground Water Board (CGWB). (2024). Ground Water Year Book. Ministry of Jal Shakti, Government of India.

Ministry of Jal Shakti. (2023). National Water Policy and Water Conservation Initiatives. Government of India.

United Nations Water (UN-Water). (2024). World Water Development Report.

United Nations Environment Programme (UNEP). (2023). Freshwater Resource Management Report.

World Health Organization (WHO). (2023). Guidelines for Drinking-water Quality.

Agarwal, A., & Narain, S. (1997). Dying Wisdom: Rise, Fall and Potential of India's Traditional Water Harvesting Systems. Centre for Science and Environment, New Delhi.

Pandey, D. N., Gupta, A. K., & Anderson, D. M. (2003). Rainwater Harvesting as an Adaptation to Climate Change. Current Science, 85(1), 46–59.

Central Water Commission (CWC). (2023). Water and Related Statistics. Government of India.

Food and Agriculture Organization (FAO). (2022). Water Harvesting for Improved Agricultural Production.

Singh, R., & Sharma, K. D. (2018). Rainwater Harvesting and Groundwater Recharge in India: Challenges and Opportunities. Journal of Water Resource Management, 32(5), 1451–1468.

Centre for Science and Environment (CSE). (2023). Rainwater Harvesting: A Lifeline for India’s Water Future.

UNESCO. (2024). Water Security and Sustainable Development Report.

ISSN No. 2583-3316

धनिया की वैज्ञानिक उन्नत खेती

एस. एल. वास्केल* एवं ए. के. त्रिपाठी

कृषि विज्ञान केंद्र सागर -II, बिजौरा, जिला सागर, मधय प्रदेश

पत्राचारकर्ता: sukhlalwaskel98@gmail.com

परिचय

धनिया एक नगदी फसल है, जो कि पूरे देश में बहुत चर्चित मसाला फसल के रूप में उगाई जाती है। धनिया के बीज खाने को सुगंधित और स्वादिष्ट बनाने के काम आते हैं। धनिया का कुलएंबेलीफेरी कुल से संबंधित है और इसका वैज्ञानिक नाम है। जो एक वार्षिक मसाला फसल है। इसके बीजों को सुखा कर मसाले के रूप में इस्तेमाल करते हैं।

गुण एवँ उपयोग

धनिया एक बहु-मूल्य, बहु-उपयोगी मसाले वाली और आर्थिक दृष्टि से सबसे अधिक उपयोग मसाला फसल हैं। तना, पत्तियां एवँ फूल सुगंधित होते हैं और पूरा कोमल पौधा चटनी, सूप और अन्य व्यंजन के स्वाद बढ़ाने में प्रयोग किया जाता है।

जल-वायु एवं मिट्टी

धनिया उष्णकटिबंधीय क्षेत्र की फसल है। बीजों के अंकुरण के लिए 25-26°C तापमान अच्छा होता है। धनिया की फसल को पाले से बहुत नुकसान होता है। सामान्यतः धनिया सभी प्रकार की मिट्टियों में उगाई जाती है, पर सिंचाई की पर्याप्त व्यवस्था होने पर दोमट-मिट्टी इसकी खेती के लिए उपयुक्त होती है। इसकी खेती के लिए मिट्टी का pH 6.5-7.5 होना चाहिए।

उन्नत किस्म

धनिया का अधिकतम उत्पादन देने वाली किस्मों का चयन करना चाहिए।

क. जवाहर धनिया-1: इस किस्म में वास्पशील तेल की मात्रा 0.67% और प्रोटीन 21.03% होती है। इस किस्म की पत्तियों में सुगंध अच्छी होती है। यह किस्म चूर्निल अर्शिता और एम वीस्टे मगाल के प्रति प्रतिरोधक क्षमता वाली है।

ख. जवाहर धनिया -10: यह किस्म मध्यम आकार की गोल धाने वाली होती है। इसके पौधे मध्यम ऊँचाई वाले होते हैं। यह किस्म उखटा रोग प्रतिरोध और स्टेमगाल व भबूतिया रोग के प्रति सहन-शील होती है। यह किस्म सिंचित और असिंचित दोनों क्षेत्रों के लिए उपयुक्त होती है। इसकी उपज 16-18 क्विंटल प्रति हेक्टेयर होती है जो 120-125 दिनों में पक कर तैयार हो जाती है।

ग. अन्य किस्मः अजमेर धनिया -2, कुम्भ राज धनिया (Rcr 436), Rcr-480, राजेंद्र धनिया -385आदि।

भूमि और खेती की तैयारी

धनिया की खेती सभी प्रकार की भूमि में की जाती है, जिसका पा.एच.मान 6.5-7.5 के बीच में हो और जल निकास की उचित व्यवस्था हो। 2-3 बार जुताई करके पाटा चला कर भूमि को समतल और भुर-भुरी करना चाहिए। सिंचित क्षेत्र में अगर जुताई के समय भूमि में नमी नहीं हो तो भूमि की तैयारी पालेवा देकर करनी चाहिए, जिससे जमीन में जुताई के समय ढेले न बने।

बुवाई का समय

धनिया की खेती रबी मौसम में की जाती है। इसकी बोनी का उत्तम समय 15 अक्टूबर से 15 नवम्बर होता है।

बीज की मात्रा

सिंचित क्षेत्र में 15-20 किग्रा प्रति हेक्टेयर और असिंचित क्षेत्र में 25-30 किग्रा प्रति हेक्टेयर बीज की आवश्यकता होती है।

बीज उपचार

भूमी और बीज जनित रोगों से सुरक्षा के लिए बीजों को 12 घंटे के लिए पानी में भिगोकर रखते हैं। उसके बाद ट्राइकोडर्मा विरड़ी 5-10 ग्राम प्रति किलो-ग्राम की दर से उपचारित बीजों को बीज जनित रोगों से बचाव के लिए स्ट्रेप्टोमाइसिन 500 पी.पी.एम से उपचारित करना लाभदायक होता है।

कतार और पौधे की दूरी

कतार से कतार की दूरी 30 सेंटी मीटर और पौधे से पौधे की दूरी 10-15 सेंटी मीटर रखें। भारीया अधिक उर्वर भूमि

में कतार से कतार की दूरी 40 सेंटी मीटर रखते हैं।

खाद और उर्वरक

असिंचित धनिया की अच्छी पैदा-वार लेने के लिए गोबर की खाद 20 टन/ है. के साथ नाइट्रोजन 40 किलो, फॉस्फोरस 30 किलो, पोटाश 20 किलो, तथा सल्फर 20 किलो प्रति हेक्टेयर की दर से और सिंचित फसल में नाइट्रोजन 40 किलो, फॉस्फोरस 20 किलो, पोटाश 20 किलो, और सल्फर 20 किलो प्रति हेक्टेयर उपयोग करते हैं।

अंतरवर्ती फसल

चना धनिया (10:2), अलसी + धनिया (6:2), कुसुम + धनिया (6:2), धनिया + गेहूँ (8:3), गन्ना + धनिया (1:3) आदि अंतरवर्ती फसल पद्धतियाँ उपयुक्त पाई गई हैं।

फसल चक्र

धनिया- मूँग, धनिया- भिंडी, धनिया- सोयाबीन, धनिया- मकई आदि फसल चक्र लाभदायक पाया गया है।

सिंचाई प्रबंधन

धनिया में पहली सिंचाई 30-35 दिनों बाद (पत्ती बनने की अवस्था), दूसरी सिंचाई 50-60 दिनों बाद (शाखा निकलने की अवस्था), तीसरी सिंचाई 70-80 दिनों बाद (फूल आने की अवस्था) तथा चौथी सिंचाई 90-100 दिनों बाद।

सस्य क्रियायें

धनिया की प्रारंभिक अवस्था में वृद्धि धीमी होती है, इसलिए पहली गुदाई एवं निराई 30 दिनों बाद अवश्य कर लेनी चाहिए। आवश्यकताअनुसार खरपतवार होने पर दूसरी गुदाई और निराई करनी चाहिए।

पौध संरक्षण

कीट प्रबंधन

क. माहूँ / चेपा (एफिड)

माहू धनिया की पत्तियों, को मलशीर्ष भागों तथा पुष्प गुच्छो पर समूह बनाकर हमला करते हैं।

नियंत्रणः इसके प्रबंधन के लिए एमिडाक्लोप्रिड 17.8 या थायोमैथाक्सम 0.5 मिली प्रति लीटर पानी में डाल कर स्प्रे करना चाहिए।

ख. बीज भृंगः यह कीट खेत में लगी फसल के साथ-साथ बीज भंडार के दौरान भी नुकसान पहुँचाता है। इसके अंडे बीज के अंदर ही देता है और लार्वा बीज के अंदर रह कर ब्रून और एंडोस्पर्म को खाकर नष्ट करता है।

नियंत्रणः जैविक उत्पाद जैसे नीम उत्पाद, नीम बीज गिरी का अर्क 5% या नीम तेल 5% से छिड़काव करने से भी इस किट का नियंत्रण कर सकते हैं।

ग. थ्रिप्सः इनके निम्फ और वयस्क दोनों ही पौधे के पुष्पगुच्छ, पत्तियाँ और तनों से रस चूसते हैं।

नियंत्रणः पीले या नीले चिपचिपे जाल का इस्तेमाल करें। बीजों का उपचार एमिडाक्लोप्रिड 0.5 मिली प्रति किलो बीज की दर से करें। या एसीटामिप्रिड 10 ग्राम-प्रति 15 लीटर पानी में डालकर छिड़काव करें

रोग प्रबंधन

क. उखाड़ा या विल्ट रोगः इस रोग से पौधे मुरझाने लगते हैं और सूख जाते हैं।

नियंत्रणः बचाव हेतु बुवाई से पूर्व बीजों को कार्बेन्डाजिम 50% WP 3 ग्राम या ट्राइकोडर्मा 10ग्राम प्रति किलोग्राम बीज की दर से बीजों को उपचारित करना चाहिए।

ख. स्टेमगैलः यह रोग कवक के द्वारा फैलता है। इसके लिए प्रतिरोधक किस्म का उपयोग करना चाहिए जैसे - जवाहर धनिया-10, जवाहर धनिया-01, RCR 436, RCR-41 आदि।

नियंत्रणः बचाव हेतु बुवाई से पूर्व बीजों को कार्बेन्डाजिम 50% WP 3 ग्राम या ट्राइकोडर्मा 10 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज की दर से बीजों को उपचारित करना चाहिए। फूल आने से पहले, सिस्टमिक कवक नाशी जैसे प्रोपीकोनाजोल या हेक्साकोनाजोल 1 ग्राम प्रति लीटर पानी के साथ स्प्रे करना चाहिए।

ग. पाउडरी मिल्ड्यूः प्रारंभिक अवस्था में पत्तियों और शाखाओं पर सफेद पाउडर की परत बन जाती है।

नियंत्रणः इसके नियंत्रण के लिए अज़ॉक्सिस्ट्रोबिन 1 ग्राम या हेक्साकोनाज़ोल 1 ग्राम प्रति लीटर पानी में डालकर स्प्रे करें।

कटाईः हरी पत्तियों के लिए 40-50 दिनों में कटाई की जा सकती है। बीज के जब धनिया के दानों को दबाने पर मध्यम से कठोर लगने लगे तथा पत्तियाँ पीली पड़ने लगे ।

उपजः सिंचित की उपज 15-18 क्विंटल/हेक्टेयर और असिंचित फसल की उपज 10-12 क्विंटल/हेक्टेयर।

निष्कर्ष

धनिया की खेती कम लागत, कम जोखिम और अधिक मुनाफेवाली फसल है। यदि किसान सही किस्म, समय पर बुवाई और वैज्ञानिक विधियों को अपनाएं, तो निश्चित रूप से अपनी आमदनी बढ़ा सकते हैं। आजही उन्नत तकनीक अपनाये और अपनी खेती को लाभ का साधन बनाये।

❖❖

ISSN No. 2583-3316

फूलों की खेती

अंजू पाल एवं विपुल असवाल*

उद्यान विज्ञान विभाग, कृषि महाविद्यालय, गोविंद बल्लभ पंत कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, पंतनगर

पत्राचारकर्ता: vipulaswal3@gmail.com

परिचय

भारत में पुष्प उत्पादन का इतिहास प्राचीन काल से जुड़ा है। वैदिक युग में फूलों का उपयोग धार्मिक अनुष्ठानों, पूजा और सजावट में किया जाता था। मुगल काल में बागवानी और पुष्प कला का विकास हुआ। आधुनिक युग में यह व्यावसायिक उद्योग बन गया। भारत में फूलों का धार्मिक, सांस्कृतिक और सामाजिक जीवन में विशेष महत्व है। पूजा-पाठ, मंदिरों, त्योहारों और अनुष्ठानों में फूलों का व्यापक उपयोग होता है। विवाह, स्वागत, शोक तथा विभिन्न सामाजिक आयोजनों में फूल सौंदर्य, श्रद्धा और भावनाओं के प्रतीक माने जाते हैं। पुष्प उद्योग कृषि अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण योगदान देता है। यह किसानों की आय बढ़ाने, रोजगार सृजन और कृषि विविधीकरण में सहायक है। घरेलू व निर्यात बाज़ार से विदेशी मुद्रा अर्जन होता है तथा सहायक उद्योगों जैसे परिवहन, प्रसंस्करण और विपणन को भी बढ़ावा मिलता है।

भारतीय पुष्प बाज़ार में मुख्यतः दो प्रकार के फूलों का उपयोग किया जाता है-ढीले फूल और कट फ्लावर। ढीले फूल सजावटी कार्यों, पूजा तथा माला बनाने के लिए उपयोग किए जाते हैं। वहीं कट फ्लावर गुलदस्तों और उपहारों में प्रयोग होते हैं तथा शहरी क्षेत्रों में इनकी माँग अधिक होती है। भारत में फूलों का सबसे अधिक उत्पादन कर्नाटक राज्य में किया जाता है। यहाँ उत्पादित फूलों का उपयोग होटल उद्योग में भी व्यापक रूप से होता है, जहाँ कट फ्लावर की माँग सर्वाधिक है। हाल के वर्षों में कट फ्लावर की माँग में तीव्र वृद्धि हुई है तथा भविष्य में इसके और बढ़ने की अपार संभावनायें हैं। इस लेख में मौसमी फूलों तथा उनकी सामान्य खेती विधियों और मौसमी प्रबंधन के बारे में वर्णन किया गया है।

मौसमी फूलों को उनकी बुवाई के समय के आधार पर तीन वर्गों में बाँटा जाता है-ग्रीष्मकालीन, वर्षाकालीन और शीतकालीन। सामान्यतः ग्रीष्म और वर्षा ऋतु में बोए जाने वाले फूल समान होते हैं, परंतु कुछ फूल ऐसे हैं, जो वर्षा ऋतु में नहीं उगाये जा सकते, जिनमें पोर्टुलाका और कोचिया प्रमुख हैं।

ग्रीष्म ऋतु के फूल

- ***लाल रंग के ग्रीष्मकालीन फूलः*** गौम्फ्रिना, जिनिया, बालसम, साल्विया, कोसमॉस
- **बैंगनी रंग के फूलः** पोर्टुलाका, फ्लॉक्स, गौम्फ्रिना, पेटुनिया
- **नारंगी रंग के ग्रीष्मकालीन फूलः** गेंदा, जिनिया, टिथोनिया, कोसमॉस, कैलेंडुला

वर्षा ऋतु के फूल

- **सफेद रंग के फूलः** कोसमॉस सफेद, फ्लॉक्स सफेद, बालसम सफेद
- **गुलाबी रंग के फूलः** जिनिया, कोसमॉस,

शीत ऋतु के फूल

- ***लाल रंग के शीतकालीन फूलः*** फ्लॉक्स पेटूनिया, स्वीट पी डायन्थस लार्क्सपुर
- **पीले रंग के शीतकालीन फूलः** कैलेंडुला, अफ्रीकन, गेंदा, नास्टर्शियम, कोरियोप्सिस, फ्यूंली
- **सफेद रंग के शीतकालीन फूलः** एलिसम, वर्बेना

जनवरी

- इस माह पूर्व में रोपे गये शीतकालीन मौसमी फूलों में निराई-गुड़ाई की जाती है तथा नाइट्रोजन की टॉप ड्रेसिंग दी जाती है।
- यदि माहूँ (एफिड) का प्रकोप दिखाई दे तो 0.2 प्रतिशत घोल बनाकर नुवान या किसी उपयुक्त कीटनाशी का छिड़काव कर नियंत्रण किया जाता है।
- माहूँ के जैविक नियंत्रण हेतु लेडी बर्ड, बीटल, ग्रीन लेसविंग आदि परभक्षी कीटों का उपयोग किया जा सकता है अथवा पौधों पर नीम तेल एवं उसके उपोत्पादों का छिड़काव किया जा सकता है।
- डहलिया एवं अन्य उन प्रजातियों में जहाँ एक बड़ा फूल प्राप्त

करना वांछित होता है, प्रारंभिक अवस्था में पिंचिंग की जाती है।
- अधिक ऊँचाई तक बढ़ने वाले पौधों में सहारा (स्टेकिंग) दिया जाता है।
- यदि फूल गमलों में उगाये गए हों तो उन्हें पर्याप्त धूप प्रदान की जाती है तथा क्यारियों में उचित नमी बनाये रखी जाती है।

स्टेकिंग

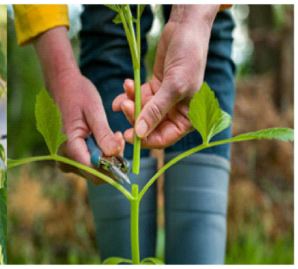

पिंचिंग

फरवरी

- फरवरी माह ग्रीष्मकालीन मौसमी फूलों जैसे गेंदा, ज़ीनिया, पोर्टुलाका, कॉसमॉस, सूरजमुखी, बालसम तथा गोम्फ्रेना की बुवाई के लिए उपयुक्त होता है।
- इस माह खेत की तैयारी 2–3 जुताइयों द्वारा की जाती है तथा पाटा लगाकर समतलीकरण किया जाता है।
- अच्छी तरह सड़ी हुई गोबर की खाद 10–15 टन प्रति हेक्टेयर की दर से मिलाई जाती है। बीजों की बुवाई नर्सरी में की जाती है, जिन्हें टाट या बोरी से ढककर हल्की सिंचाई दी जाती है।
- साथ ही फरवरी वह समय होता है जब अधिकांश शीतकालीन मौसमी फूलों में पुष्पन प्रारंभ हो जाता है। यदि पुष्प कलियों में किसी भी प्रकार के कीट या रोग का प्रकोप दिखाई दे, तो उचित कीटनाशी का प्रयोग कर नियंत्रण करना चाहिए।
- फूलों की टूट-फूट से बचने के लिए क्यारियों में अनावश्यक निराई-गुड़ाई से बचना चाहिए।
- यदि कोई खरपतवार दिखाई दे तो उसे हाथ से निकालें तथा क्यारियों में उचित नमी बनाए रखें।
- सूखे एवं रोगग्रस्त फूलों को हटा देना चाहिए।
- यदि बीज बन गए हों तो उन्हें एकत्र कर उपयुक्त स्थान पर सुरक्षित रूप से संग्रहित करना चाहिए।
- इस माह उत्तराखंड के पर्वतीय क्षेत्रों में बुरांश पूर्ण पुष्पन अवस्था में होता है।

मार्च

- इस माह शीतकालीन मौसमी फूल पूर्ण रूप से खिले रहते हैं, इसलिए क्यारियों में अधिक छेड़छाड़ से बचना चाहिए।
- यदि पौधों पर किसी प्रकार का कीट दिखाई दे तो उसका उचित नियंत्रण किया जाना चाहिए।
- जिन पौधों में बीज बन गये हों, उन्हें एकत्र कर अच्छी तरह सुखाकर सुरक्षित नमी स्तर पर संग्रहित करना चाहिए।
- इस माह बुरांश के फूलों की तुड़ाई प्रातः काल में की जाती है, इसके बाद फूलों की ग्रेडिंग की जाती है, ताकि गुणवत्ता के अनुसार उनका उपयोग किया जा सके और उनसे मूल्यवर्धित उत्पाद तैयार किये जा सकें।

अप्रैल

- इस माह ग्रीष्मकालीन पौधे रोपाई योग्य ऊँचाई प्राप्त कर लेते हैं तथा सायंकाल के समय उनका प्रत्यारोपण किया जाता है। प्रत्यारोपण से पूर्व क्यारियों में 5–10 किलोग्राम प्रति वर्ग मीटर की दर से कम्पोस्ट, गोबर की खाद या पत्तियों की सड़ी हुई खाद मिलाई जाती है।
- अंतिम गुड़ाई के समय 100 ग्राम नाइट्रोजन, 60 ग्राम फॉस्फोरस तथा 50 ग्राम पोटाश का प्रयोग किया जाता है। प्रत्यारोपण के बाद हल्की सिंचाई दी जाती है।
- पौधे से पौधे तथा पंक्ति से पंक्ति की दूरी किस्म के अनुसार रखी जाती है। उदाहरण के लिए, पोर्टुलाका एवं कोचिया के प्रत्यारोपण हेतु अनुशंसित दूरी क्रमशः 10 × 15 सेमी एवं 30 × 30 सेमी होती है।
- वर्षा ऋतु के फूलों के लिए इस माह नर्सरी क्यारियों की तैयारी की जाती है।

मई

- ग्रीष्मकालीन मौसमी पौधों में आवश्यक नमी बनाये रखने के लिए एक दिन छोड़कर एक दिन सिंचाई की जाती है।
- यदि तापमान अधिक हो तथा धूप तीव्र हो, तो प्रकाश की तीव्रता को कुछ हद तक कम करने के लिए शेड नेट हाउस की व्यवस्था की जाती है।
- वर्षा ऋतु की फसलों के प्रत्यारोपण हेतु ज़ीनिया, अमरैंथस, सेलोसिया तथा गोम्फ्रेना की बुवाई नर्सरी में की जाती है।

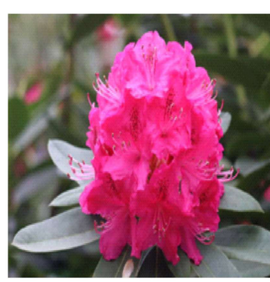

बुरांश

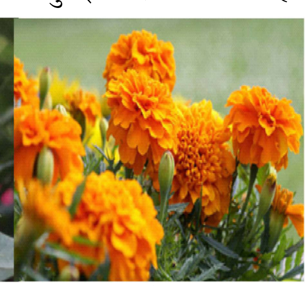

गेंदा

नर्सरी को छायादार स्थान पर स्थापित किया जाता है तथा सुबह और शाम हल्की सिंचाई दी जाती है। जब पौधे 3–4 इंच की ऊँचाई प्राप्त कर लेते हैं, तब उनका प्रत्यारोपण किया जाता है।

जून

- इस माह वर्षा ऋतु के मौसमी फूलों का प्रत्यारोपण सायंकाल 4 बजे के बाद करना उपयुक्त होता है तथा प्रत्यारोपण के पश्चात 8–10 दिनों तक क्यारियों में उपयुक्त नमी बनाये रखना चाहिए।
- इसी समय पोर्टुलाका में बीज बन जाते हैं, जिन्हें एकत्र कर सुखाकर सुरक्षित रूप से संग्रहित करना चाहिए।
- वर्षा होने से पूर्व तने के किनारे पर बने कैप्सूल को हाथ से तोड़कर पौधों से अलग कर लें तथा धूप में अच्छी तरह सुखाकर उसका भंडारण करें।
- कोचिया का बीज थोड़ी देर से बनता एवं पकता है इसलिए पौधे पर ही बीज की जांच करते रहें जब बीज पूरी तरह पक जाये तब उसे छड़ी से पीटकर पौधे से अलग कर लें, अच्छी तरह सुखाकर पॉलिथीन में भरकर बीजों को अच्छी तरह से सील कर भंडारण करें।
- पूर्व में रोपाई किये गये पौधों में जल निकास की उचित व्यवस्था करें क्यारियों में किसी भी दशा में पानी नहीं रुकना चाहिए।
- इस माह उत्तराखंड के पर्वतीय क्षेत्रों में फ्यूंली की बुवाई की जाती है, उत्तराखंड और हिमालयी क्षेत्रों में यह प्राकृतिक रूप से सर्दियों के अंत में खूब खिलता है, इसलिए फूल देई में इसका उपयोग होता है।

जुलाई

- क्यारियों में लगाए गए मौसमी फूलों की सिंचाई एवं जल निकास की उचित व्यवस्था करें,
- पत्ती छेदन कीट अथवा कोई अन्य कीट दिखाई दे तो तुरंत कीटनाशी का प्रयोग कर उसका नियंत्रण करें,
- सूखी पत्तियों को पौधों से अलग कर दें यदि ज़्यादा फूल लेने हैं तो पौधों की भीड़ विशर्थ कली को तोड़ दें, जिसमें ज़्यादा शाखायें आने पर ज़्यादा मात्रा में फूल प्राप्त होंगे।
- बालसम के पौधे में पत्तियों के पास से जो शाखायें निकल रही हैं उन्हें रोज़ हाथ से तोड़ते रहें,
- क्यारियों में आवश्यक निराई-गुड़ाई एवं खरपतवार नियंत्रण करते रहें,
- यदि पूर्व में नाइट्रोजन की अधिक मात्रा ही प्रयोग की गई है तो रोपाई के पंद्रह दिनों बाद एक चौथाई तथा रोपाई के तीस दिन बाद बकाया एक चौथाई मात्रा टॉप ड्रेसिंग के रूप में क्यारियों में डालकर हल्की सिंचाई कर दें।

सिंचाई एवं फूलों की तुड़ाई

अगस्त

- पौधों में उचित जल-निकास (ड्रेनेज) बनाये रखें।
- इस समय जिनिया, बालसम और गोम्फ्रेना जैसे फूल पूर्ण खिले हुए होते हैं, इसलिए उनकी अच्छी तरह देखभाल करें तथा आवश्यकता अनुसार फफूँदनाशी और कीटनाशी का प्रयोग करें। निराई-गुड़ाई समय पर करते रहें।
- इस माह जिनिया के बीज बनने लगते हैं, अतः फूलों को तोड़कर बीजों को सुखायें और उन्हें उचित नमी स्तर तक सुखा लें। बीज के लिए हमेशा बड़े आकार के फूलों का चयन करें। फूलों/बीजों को आकार और रंग के आधार पर अलग-अलग करके संग्रहित किया जा सकता है।
- इसी समय वर्षा ऋतु एवं ग्रीष्म ऋतु के अन्य फूलों के भी बीज बनते हैं, जिन्हें उपयुक्त अवस्था पर काटकर संग्रहित करना चाहिए। कुछ शीत ऋतु के वार्षिक फूल, जिनमें फूल आने में अधिक समय लगता है, जैसे कार्नेशन, एस्टर आदि- इनकी इस माह पॉलीहाउस में बुवाई की जाती है।

सितम्बर

- इस माह ग्रीष्म ऋतु एवं वर्षा ऋतु के फूलों के बीज पूरी तरह बन जाते हैं, इसलिए बीजों को साफ किया जाता है, धूप में सुखाया जाता है तथा फफूँदनाशी और कीटनाशी से उपचारित कर के स्वच्छ एवं सूखे स्थान में संग्रहित किया जाता है।
- इस महीने शीत ऋतु के वार्षिक फूलों के बीजों की बुवाई की जाती है। इसके लिए 1 मीटर चौड़ी क्यारियाँ तैयार की जाती हैं। यदि मृदा-जनित रोगों की संभावना हो, तो क्यारियों को 2 मिलीलीटर प्रति लीटर घोल में फॉर्मालिन/ फॉर्माल्डिहाइड से भिगोया (ड्रेंच) जाता है तथा 72 घंटे के लिए पॉलीथीन से ढक दिया जाता है। 72 घंटे बाद पॉलीथीन शीट हटा दी जाती है और क्यारियों को 7–8 घंटे खुला छोड़ दिया जाता है। इसके बाद क्यारियों में

पानी भर दिया जाता है।

जब पानी सूख जाता है, तब फावड़े की सहायता से क्यारियों की गुड़ाई/खुदाई की जाती है और फिर बीजों की बुवाई की जाती है। बीजों की बुवाई हमेशा कतारों में करनी चाहिए। यदि बीज बहुत छोटे हों, तो उन्हें रेत या मिट्टी में मिलाकर बुवाई करें। बुवाई के बाद बीजों को रेत, मिट्टी या अच्छी तरह सड़ी हुई खाद की पतली परत से ढक देना चाहिए।

- बीजों को सीधे बहते पानी से बचाने तथा मिट्टी में उपयुक्त तापमान बनाये रखने के लिए, अंकुरण होने और पौधे मिट्टी की सतह से बाहर आने तक बीजों को जैविक मल्च जैसे कि पुआल, कम्पोस्ट से ढक कर रखें। 20–25 दिनों बाद पौधे रोपाई के लिए तैयार हो जाते हैं।
- इसके अतिरिक्त, इस माह डबल डहलिया की कलमों को रेत से भरे गमलों में लगाया जाता है।

अक्टूबर

- शीत ऋतु के वार्षिक फूलों की पौध की रोपाई के लिए क्यारियाँ तैयार करते समय प्रति वर्ग मीटर 15–20 किलोग्राम अच्छी तरह सड़ी हुई गोबर की खाद या कम्पोस्ट मिलायें। साथ ही अंतिम निराई-गुड़ाई के समय 200–250 ग्राम डीएपी का प्रयोग करें। रोपाई सायंकाल में की जाती है।
- छोटे पौधों के लिए 15 × 15 सेमी तथा बड़े आकार के पौधों के लिए 20 × 30 सेमी की दूरी रखी जाती है। रोपाई के तुरंत बाद हल्की सिंचाई करें।
- इसके अतिरिक्त, इस माह जड़ विकसित कर चुकी डबल डहलिया की कलमों की भी रोपाई की जा सकती है।

नवम्बर

- सभी फूलों में निराई–गुड़ाई एवं खरपतवार नियंत्रण की पूरी व्यवस्था रखें।
- क्यारियों में उचित नमी बनाये रखें।
- रोपाई के 15–20 दिन बाद शाम के समय 150–200 ग्राम प्रति वर्ग मीटर की दर से खाद छिड़क कर दें।
- यदि कलियों पर किसी भी प्रकार की बीमारी अथवा कीट के लक्षण दिखाई दे रहे हों तो तुरन्त उपचार करें।
- माह के अन्त में पुनः नाइट्रोजन का प्रयोग करें तथा खाद छिड़कने के बाद खुरपी द्वारा उसे जमीन में मिला दें।
- डबल डहलिया में मुख्य कलिका के अलावा निकलने वाली किनारी की कलिकाओं को निरन्तर तोड़ते रहने से ही बड़े आकार का एक फूल मिलता है। डबल डहलिया के पौधों को आवश्यकतानुसार सहारा प्रदान करें। डबल डहलिया के फूलों को सहारा देने के लिए पौधों में स्टेकिंग (खूँटी लगाना) करें।
- इस माह उत्तराखंड के पर्वतीय क्षेत्रों में बुरांश में पुष्प आरंभ होता है।

दिसम्बर

- इस माह अधिकतर मौसम बादल वाला रहता है तथा वर्षा की संभावना होती है, जिसके कारण रोगों और कीटों का प्रकोप बढ़ सकता है। विशेष रूप से माहूँ (एफिड्स) तथा कटवर्म जैसे अन्य कीट पौधों के विभिन्न भागों को नुकसान पहुँचा सकते हैं। इनके नियंत्रण के लिए किसी भी उपयुक्त सिस्टमिक कीटनाशक जैसे कॉन्फिडोर, इमिडास्टार का प्रयोग किया जा सकता है।
- इस समय क्यारियों में निराई-गुड़ाई करना अत्यंत आवश्यक है।
- यदि बुवाई देर से की गई हो, तो इस माह उर्वरकों की दूसरी खुराक दी जा सकती है।
- यदि पौधे अत्यधिक ऊँचाई में बढ़ रहे हों, तो उनकी शीर्ष कटाई कर देनी चाहिए, जिससे अधिक शाखायें निकलें और प्रति पौधा अधिक फूल प्राप्त हों।
- यदि केवल एक बड़ा फूल प्राप्त करना उद्देश्य हो, तो पौधों की पार्श्व शाखायें हटा देनी चाहिए।

निष्कर्ष

फूलों की खेती में समन्वित एवं माह-वार प्रबंधन पद्धतियों का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। जब बुवाई, रोपाई, पौध प्रबंधन तथा तुड़ाई जैसी विभिन्न कृषि क्रियायें सही समय, सही विधि एवं उचित ढंग से की जाती हैं, तो पौधों की बेहतर वृद्धि, समय पर पुष्पन तथा अधिक उत्पादन प्राप्त होता है। माह-वार प्रबंधन अपनाने से किसान विशेष रूप से विवाह, त्योहारों, धार्मिक आयोजनों एवं स्थानीय बाजारों की माँग के अनुसार फूलों का उत्पादन कर सकते हैं, जिससे उन्हें बेहतर मूल्य एवं अधिक आय प्राप्त होती है। उचित योजना से अनावश्यक आदानों एवं उत्पादन लागत में भी कमी आती है। इसके अतिरिक्त, फूल देई जैसे पारंपरिक त्योहार उत्तराखंड जैसे क्षेत्रों में फूलों के सांस्कृतिक एवं पारिस्थितिक महत्व को दर्शाते हैं तथा स्थानीय पुष्पीय पौधों के संरक्षण को प्रोत्साहित करते हैं। फूल जैसे रोडोडेंड्रोन का प्रयोग जूस, जैम, जेली और स्क्वैश बनाने में किया जाता है, जिससे फूलों का बाजार मूल्य भी सुधरता है और किसानों की आय बढ़ती है।

❖❖

ISSN No. 2583-3316

सतत् सब्जी उत्पादन के लिए नवीन तकनीकें: हरित भविष्य की ओर बढ़ते कदम

शिव नारायण धाकड़* एवं दिव्या आरती
शाकीय विज्ञान विभाग, भाकृअनुप-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली
पत्राचारकर्ता: sndhakad.horti999@gmail.com

परिचय

भारत विश्व के प्रमुख सब्जी उत्पादक देशों में से एक है। सब्जियाँ न केवल हमारे भोजन को पौष्टिक बनाती हैं, बल्कि किसानों की आय बढ़ाने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। वर्तमान समय में बढ़ती जनसंख्या, जलवायु परिवर्तन जल संकट, मिट्टी की उर्वरता में कमी तथा उत्पादन लागत में वृद्धि जैसी चुनौतियाँ कृषि क्षेत्र के सामने खड़ी हैं। ऐसे में केवल अधिक उत्पादन करना ही पर्याप्त नहीं है, बल्कि प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण करते हुए उत्पादन बढ़ाना भी आवश्यक है। इसी सोच को 'सततसब्जी उत्पादन' कहा जाता है। सततसब्जी उत्पादन का उद्देश्य किसानों को बेहतर आय प्रदान करना, उपभोक्ताओं को सुरक्षित एवं गुणवत्ता पूर्ण सब्जियाँ उपलब्ध कराना तथा पर्यावणय संतुलन बनाये रखना है।

सततसब्जी उत्पादन की आवश्यक है?

आज कृषि कई चुनौतियों का सामना कर रही है। अनियमित वर्षा, बढ़ता तापमान, नई बीमारियाँ और घटते जल स्रोत किसानों की मेहनत को प्रभावित कर रहे हैं। दूसरी ओर, उपभोक्ता भी अब ऐसी सब्जियाँ चाहते हैं जो, ताज़ी, सुरक्षित और रसायन-मुक्त हों।

सततसब्जी उत्पादन इन सभी चुनौतियों का समाधान प्रस्तुत करता है। यह खेती की ऐसी प्रणाली है, जिसमें प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण करते हुए उच्च गुण वत्ता वाली उपज प्राप्त की जाती है। इससे न केवल किसान की आय बढ़ती है बल्कि आने वाली पीढ़ियों के लिए भी प्राकृतिक संसाधन सुरक्षित रहते हैं।

संरक्षित खेती: आधुनिक कृषि की नई पहचान

अनियमित वर्षा, अत्यधिक गर्मी, पाला और ओलावृष्टि जैसी समस्यायें सब्जी उत्पादन को प्रभावित करती हैं। संरक्षित खेती में पॉली हाउस, नेटहाउस और लो-टनल जैसी संरचनाओं का उपयोग करके पौधों को नियंत्रित वातावरण प्रदान किया जाता है।

इस तकनीक से वर्ष भर उत्पादन संभव होता है, पौधों की वृद्धि बेहतर होती है तथा उत्पादन और गुणवत्ता दोनों में वृद्धि होती है। टमाटर, शिमला मिर्च, खीरा एवं अन्य उच्च मूल्य वाली सब्जियों के लिए यह तकनीक विशेष रूप से लाभकारी है।

ड्रिप सिंचाई और मल्चिंग: जलसंरक्षण की प्रभावी तकनीक

जल को जीवन कहा जाता है, और कृषि के लिए यह अमृत के समान है। लेकिन लगातार गिरते भूजलस्तर ने जल संरक्षण की आवश्यकता को और अधिक बढ़ा दिया है।

जल की उपलब्धता लगातार कम होती जा रही है। ऐसे में ड्रिप सिंचाई किसानों के लिए एक उपयोगी तकनीक सिद्ध हो रही है। इसमें पानी सीधे पौधों की जड़ों तक पहुँचाया जाता है,

जिससे जल की बचत होती है और पौधों को आवश्यक नमी मिलती रहती है।

ड्रिप सिंचाई के साथ मल्चिंग का उपयोग करने से मिट्टी की नमी लंबे समय तक बनी रहती है, खरपतवारों की वृद्धि कम होती है तथा उत्पादन में उल्लेखनीय वृद्धि होती है। यह तकनीक विशेष रूप से टमाटर, मिर्च, बैंगन और कद्दू वर्गीय सब्जियों में सफल रही है।

प्रमुख लाभ

- 50 से 70 प्रतिशत तक जल बचत
- खरपतवार कम
- पौधों की बेहतर वृद्धि
- उर्वरकों की बचत
- उत्पादन में वृद्धि

जैविक खेती और समेकित पोषक तत्व प्रबंधन

रासायनिक उर्वरकों के अत्यधिक उपयोग से मिट्टी का स्वास्थ्य प्रभावित होता है। इसलिए जैविक खेती और समेकित पोषक तत्व प्रबंधन का महत्व बढ़ रहा है। गोबर खाद, वर्मी कम्पोस्ट, हरी खाद, जैव उर्वरक तथा नीम आधारित उत्पाद मिट्टी की उर्वरता को बनाए रखने में मदद करते हैं।

समेकित पोषक तत्व प्रबंधन (INM) में जैविक एवं रासायनिक उर्वरकों का संतुलित उपयोग किया जाता है, जिससे पौधों को पर्याप्त पोषण मिलता है और मिट्टी की गुणवत्ता भी बनी रहती है।

समेकित कीट एवं रोग प्रबंधन

कीट नाशकों का अत्यधिक उपयोग पर्यावरण और मानव स्वास्थ्य दोनों के लिए हानिकारक है। समेकित कीट एवं रोगप्रबंधन (IPM) के अंतर्गत जैविक एवं यांत्रिक उपायों को प्राथमिकता दी जाती है।

फेरोमोनट्रैप, पीलेचिपचिपेट्रैप, ट्राइकोडर्मा, जैव कीटनाशक तथा रोगप्रतिरोधी किस्मों के उपयोग से कीट एवं रोगों का प्रभावी नियंत्रण किया जा सकता है। इससे उत्पादन लागत कम होती है और सुरक्षित सब्जियों का उत्पादन संभव होता है।

आधुनिक तकनी कें: कृषि का नया युग

वर्तमान समय में हाइड्रोपोनिक्स, वर्टिकलफार्मिंग, ड्रोन, इंटरनेट ऑफथिंग्स (IoT) और कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI) जैसी तकनीकें कृषि क्षेत्र में तेजी से लोक प्रिय हो रही हैं।

हाइड्रोपोनिक्स में पौधों को बिना मिट्टी के पोषक घोल में उगाया जाता है, जिससे कमपानी में अधिक उत्पादन प्राप्त होता है। वर्टिकल फार्मिंग सीमित भूमि वाले क्षेत्रों के लिए एक उपयोगी विकल्प है। वहीं ड्रोन और सेंसर आधारित तकनीकें फसलों की निगरानी, रोग पहचान तथा सटीक प्रबंधन में सहायता प्रदान करती हैं।

जलवायु-स्मार्ट सब्जी उत्पादन

जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को देखते हुए ऐसी तकनीकों की आवश्यकता है, जो मौसम संबंधी जोखिमों को कम कर सकें। सूखा सहनशील किस्मों का चयन, वर्षा जल संचयन, माइक्रो सिंचाई तथा संरक्षित खेती जैसी तकनीकें जलवायु-स्मार्ट कृषि की दिशा में महत्वपूर्ण कदम हैं।

प्रमुख उपाय

- सूखा सहन शील किस्में
- वर्षा जल संचयन
- माइक्रो सिंचाई
- संरक्षित खेती

निष्कर्ष

सतत् सब्जी उत्पादन केवल एक तकनीक नहीं, बल्कि भविष्य की आवश्यकता है। संरक्षित खेती, ड्रिप सिंचाई, जैविक खेती, समेकितपोषक तत्व प्रबंधन, समेकित कीट प्रबंधन तथा आधुनिक डिजिटल तकनीकों के समन्वित उपयोग से उत्पादन बढ़ाने के साथ-साथ पर्यावरण संरक्षण भी संभव है। कम संसाधनों में अधिक उत्पादन प्राप्त कर सकते हैं तथा अपनी आय में वृद्धि कर सकते हैं। सतत् सब्जी उत्पादन ही आने वाले समय में सुरक्षित, लाभकारी और पर्यावरण-अनुकूल कृषि की आधार शिला बनेगा।

'स्वस्थ जीवन की नींव स्वस्थ भोजन है, और स्वस्थ भोजन की शुरुआत खेतों से होती है।'

❖❖

ISSN No. 2583-3316

ऑर्गेनिक मित्र मोबाइल ऐप: जैविक खेती की दिशा में एक डिजिटल क्रांति

अंजना गुप्ता* एवं रश्मि शुक्ल

कृषि विज्ञान केंद्र, जबलपुर, मध्य प्रदेश

पत्राचारकर्ता: blogger.sp2020@gmail.com

परिचय

आज के समय में कृषि क्षेत्र तेजी से बदल रहा है। पारंपरिक खेती से आगे बढ क़र किसान अब आधुनिक तकनीकों और डिजिटल साधनों का उपयोग कर रहे हैं। इसी दिशा में 'ऑर्गेनिक मित्र' (Organic Mitra) मोबाइल ऐप एक महत्वपूर्ण पहल के रूप् में उभरकर सामने आया है। इस ऐप का निर्माण कृषि विज्ञान केन्द्र, जबलपुर की अंजना गुप्ता (कम्प्यूटर विज्ञान की विशेषज्ञ) के द्वारा खासतौर पर उन किसानों के लिए बनाया गया है, जो जैविक खेती (व्तहंदपब थ्ंतउपदह) अपनाना चाहते हैं या पहले से कर रहे हैं। यह ऐप न केवल जानकारी प्रदान करता है बल्कि किसानों को सही दिशा में मार्गदर्शन देकर उनकी उत्पादकता और आय बढ़ाने में भी मदद करता है।

ऑर्गेनिक मित्र ऐप क्या है?

ऑर्गेनिक मित्र एक स्मार्ट मोबाइल एप्लिकेशन है, जिसे किसानों को जैविक खेती के बारे में संपूर्ण जानकारी देने के लिए विकसित किया गया है। यह ऐप किसानों को फसल चयन से लेकर कटाई तक हर चरण में सहायता प्रदान करता है। इसमें आधुनिक तकनीकों जैसे आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस (AI), वॉइसअ सिस्टेंट और डेटा एनालिसिस का उपयोग किया गया है। यह ऐप खास तौर पर हिंदी भाषा में उपलब्ध है, जिससे ग्रामीण क्षेत्रों के किसान भी इसे आसानी से समझ और उपयोग कर सकते हैं। साथ ही आवश्यकता पड़ने पर विशेषज्ञ से कॉल या संदेश के माध्यम से सलाह ले सकते है।

ऐप की मुख्य विशेषताये

क. जैविक खेती गाइड

इस ऐप का सबसे महत्वपूर्ण विशेषता है 'जैविक खेतीगाइड'। इसमें विभिन्न फसलों के लिए क्रमशः जानकारी दी जाती है जैसेः

- मिट्टी की तैयारी
- बीज उपचार
- बुवाई की विधि
- जैविक खाद का उपयोग
- सिंचाई और देखभाल

उदाहरण के तौर पर गेहूँ की खेती के लिए ऐप में चार मुँख्य चरण दिखाए गए हैं, जिससे किसान आसानी से प्रक्रिया समझ सकता है।

ख. मिट्टी स्वास्थ्य ट्रैकर

मिट्टी की गुणवत्ता खेती की सफलता का आधार होती है। इस ऐप में 'मिट्टीस्वास्थ्य ट्रैकर' फीचर दिया गया है, जो किसानों को उनकी मिट्टी की स्थिति के बारे में स्पष्ट जानकारी देता है।

- पोषक तत्वों की जानकारी
- सुधार के सुझाव
- उपयुक्त फसल की सलाह

इससे किसान अपनी भूमि के अनुसार सही निर्णय ले सकते है।

ग. कीट पहचान (AI आधारित)

किसानों के लिए कीट और रोग एक बड़ी समस्या होती हैं। इस ऐप में 'कीट पहचान' फीचर दिया गया है जिसमें किसान फसल की फोटो अपलोड कर के यह जान सकते है कि कौन सा कीट या रोग है।

- AI आधारित पहचान जैविक उपचार सुझाव
- तुरंत समाधान

यह फीचर समय और पैसे दोनों की बचत करता है।

घ. प्राकृतिक खेती मार्ग दर्शन

ऐप में प्राकृतिक खेती (Natural Farming) से जुड़ी विस्तृत जानकारी भी उपलब्ध है। इसमें रासायनिक उर्वरकों के बजाय प्राकृतिक विकल्पों पर जोर दिया गया है, जैसेः

- गोबर खाद
- जीवामृत
- बीजामृत

यह पर्यावरण के अनुकूल खेती को बढ़ावा देता है।

ङ. सरकारी योजनाओं की जानकारी

ऑर्गेनिक मित्र ऐप में किसानों के लिए विभिन्न सरकारी

योजनाओं की जानकारी भी उपलब्ध है, जैसेः

- परंपरागत कृषि विकास योजना (PKVY)
- पीएम किसान सम्मान निधि
- फसल बीमा योजना
- मृदास्वास्थ्य कार्ड योजना

इससे किसानों को सरकारी लाभ प्राप्त करने में आसानी होती है।

च. वॉइस असिस्टेंट (सुनो विशेष्ता)

इस ऐप की एक खास विशेष्ता है 'सुनो' बटन, जिससे किसान जानकारी को सुन भी सकता है।

- पढ़ने में कठिनाई वाले किसानों के लिए उपयोगी
- सरल और स्पष्ट भाषा
- समय की बचत

छ. मौजूदा मौसम और सलाह

ऐप किसानों को मौजूदा मौसम की जानकारी देता है।

- तापमान
- वर्षा की संभावना
- मौसम के अनुसार सलाह

इससे किसान सही समय पर सही निर्णय ले सकते है।

ज. जैविक इनपुट कैलकुलेटर

यह फीचर किसानों को यह समझने में मदद करता है कि उन्हें कितनी मात्रा में जैविक खाद या अन्य सामग्री की आवश्यकता है।

- सटीक गणना
- लागत नियंत्रण
- बेहतर उत्पादन

ऑर्गेनिक मित्र ऐप का उपयोग कैसे करें?

- ऐप डाउनलोड करें और इंस्टॉल करें
- भाषा का चयन करें
- अपनी फसल चुनें
- चरण दर चरण मार्गदर्शक का पालन करें
- जरूरत पड़ने पर फोटो अपलोड करके समस्या का समाधान पायें

यह प्रक्रिया बहुत सरल और उपयोग कर्ता के अनुकूल है।

किसानों के लिए लाभ

क. ज्ञान में वृद्धिः किसान नई तकनीकों और जैविक तरीकों के बारे में सीखते हैं।

ख. लागत में कमीः रासायनिक खाद और कीटनाशकों की जरूरत कम होती है।

ग. बेहतर उत्पादनः सही मार्गदर्शन से फसल की गुणवत्ता और मात्रा दोनों बढ़ती हैं।

घ. पर्यावरण संरक्षणः जैविक खेती से मिट्टी, पानी और हवा को नुकसान नहीं पहुंचता।

ङ. स्वास्थ्य लाभः रसायन मुक्त फसलें मानव स्वास्थ्य के लिए बेहतर होती हैं।

भविष्य की संभावनायें

ऑर्गेनिक मित्र ऐप को भविष्य में और बेहतर बनाया जा सकता है, जैसे

- बहु - भाषी समर्थन
- मार्केटलिंकिंग (फसल बेचने की सुविधा)
- लाइव विशेषज्ञ सलाह
- ड्रोन और प्वज्इंटीग्रेशन

यह ऐप भारत के कृषि क्षेत्र में डिजिटल क्रांति ला सकता है।

निष्कर्ष

ऑर्गेनिक मित्र मोबाइल ऐप किसानों के लिए एक अत्यंत उपयोगी और प्रभावशाली डिजिटल टूल है। यह न केवल जैविक खेती को बढ़ावा देता है बल्कि किसानों को आत्मनिर्भर बनने में भी मदद करता है। इसके माध्यम से किसान आधुनिक तकनीकों का लाभ उठाकर अपनी आय बढ़ा सकते हैं और पर्यावरण को सुरक्षित रख सकते हैं। आज के डिजिटल युग में इस तरह के ऐप्स किसानों के जीवन को सरल और समृद्ध बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। यदि इस ऐप का सही उपयोग किया जाए, तो यह भारत में जैविक खेती को एक नई दिशा दे सकता है। 'ऑर्गेनिक मित्र' केवल एक ऐप नहीं, बल्कि किसानों के लिए एक सच्चा मित्र है, जो हर कदम पर उनका मार्गदर्शन करता है और उन्हें सफल खेती की ओर ले जाता है।

संदर्भ

Mobile Application "Organic Mitra"

Ministry of Agriculture & Farmers Welfare

Digital Agriculture Initiatives and Organic Farming Guidelines

वेबसाइटः https://agricoop-nic-in

Artificial Intelligence in Agriculture Reports

वेबसाइटः https://www-niti-gov-in

Food and Agriculture Organization (FAO)

Organic Farming and Digital Agriculture Resources

वेबसाइटः https://www-fao-org

Indian Council of Agricultural Research

Organic Farming Techniques and Pest Management Studies

वेबसाइटः https://icar-org-in